1170

अनेकान्त

प्रधान सम्पादक—पं० जुगलकिशोर मुख्तार

वर्ष ९ किरण १

सम्पादक-मण्डल

पण्डित दरबारीलाल न्यायाचार्य कोठिया

पण्डित अयोध्याप्रसाद 'गोयलीय'

इस मण्डलमें एक दो विद्वानोंके नाम अभी और शामिल होनेको हैं। स्वीकृति मिलनेपर उनको प्रकट किया जायगा।

विषय-सूची

१—समन्तभद्र भारतीके कुछ नमूने (युक्त्यनुशासन)—[सम्पादक] ... १

२—रत्नकरण्डके कर्तृत्वविषयमें मेरा विचार और निर्णय—[सम्पादक] ... ५

३—आप्तमीमांसा और रत्नकरण्डका भिन्नकर्तृत्व—[डा० हीरालाल जैन एम० ए०] ... ९

४—जैन कालोनी और मेरा विचार पत्र—[जुगलकिशोर मुख्तार] ... १३

५—न्यायकी उपयोगिता—[पं० दरबारीलाल कोठिया] ... १७

६—स्व० मोहनलाल दलीचन्द देसाई—[भंवरलाल नाहटा] ... २१

७—आचार्यकल्प पं० टोडरमल्ल जी—[पं० परमानन्द जैन शास्त्री] ... २५

८—समन्तभद्रभाष्य—[पं० दरबारीलाल कोठिया] ... ३२

९—समयसारकी महानता—[पूज्य कानजी स्वामी] ... ३३

१०—शंका समाधान—[पं० दरबारीलाल कोठिया] ... ३४

११—विविध ... ३६

१२—साहित्य परिचय और समालोचन ... ४३

आ.श्री. कैलाससागर सूरि ज्ञान मंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
ला. क.

जनवरी १९४८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्तकी नई व्यवस्था और नया आयोजन

आज पाठकोंको यह जानकर बड़ी प्रसन्नता होगी, कि अब उन्हें अनेकान्तके समयपर प्रकाशित न होने-जैसी किसी शिकायतका अवसर नहीं मिलेगा। साथ ही पत्र भी अधिक उन्नत अवस्थाको प्राप्त होगा। क्योंकि दानवीर साहू शान्तिप्रसादजीने अब उसे अपनी सरपरस्तीमें लेलिया है और अपनी संस्था भारतीयज्ञानपीठ काशीके साथ उसका सम्बन्ध जोड़ दिया है। इस वर्षके शुरूसे ही पत्रके सम्पादन-विभागकी जिम्मेदारी वीर-सेवा-मन्दिरके ऊपर रहेगी, जिसके लिये एक सम्पादक-मण्डलकी भी योजना हो गई है, और शेष पत्रके प्रकाशन, संचालन एवं आर्थिक आयोजन आदिकीसारी जिम्मेदारी ज्ञानपीठके ऊपर होगी। साहूजी अनेकान्तको जीवनमें स्फूर्तिदायक महत्त्वके लेखोंसे परिपूर्ण ही नहीं, किन्तु सुरुचिपूर्ण छपाई आदिसे भी आकर्षक बने हुए एक ऐसे आदर्श पत्रके रूपमें देखना चाहते हैं जो नियमित रूपसे समय पर प्रकाशित होता रहे। इसके लिये विशेष आयोजन हो रहा है।

भाई अयोध्याप्रसादजी गोयलीय, जो अनेकान्तके जन्मकालसे ही उसके (तीन वर्षतक) प्रकाशक तथा व्यवस्थापक रहे हैं और जिनके समयमें अनेकान्तने काफी उन्नति की है और वह समय पर बराबर निकलता रहा है, आजकल ज्ञानपीठके मंत्री हैं, अनेकान्तसे हार्दिक प्रेम रखते हुए भी कुछ परिस्थितियोंके वश पिछले कई वर्षसे वे उसमें कोई सक्रिय सहयोग नहीं दे रहे थे; परन्तु उसी प्रेमके कारण उन्हें अनेकान्तका समय पर न निकलना और विशेष प्रगति न करना बराबर अखर रहा था। और इस लिये उस सम्बन्धमें मुझसे मिलकर बातें करनेके लिये वे जनवरीके शुरूमेंही (ता० २ को) वीरसेवामन्दिरमें पधारे थे, उनसे अनेकान्तके सम्बन्धमें काफी चर्चा हुई और उसे अधिक लोकप्रिय एवं व्यापक बनानेकी योजनापर विचार किया गया। अन्तको मेरी स्वीकृति लेनेके बाद वे बनारसमें साहूशान्तिप्रसादजीसे भी साक्षात मिले हैं। और उनकी पूर्ण स्वीकृति लेकर अनेकान्तकी उस नई व्यवस्था एवं योजनाके करनेमें सफल हुए हैं जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है। अतः इस सारे आयोजन का प्रधान श्रेय गोयलीयजीको ही प्राप्त है। गोयजीने मंत्रीकी हैसियतसे ज्ञानपीठकी सारी जिम्मे रियों और पत्रसम्बन्धी व्यवस्थाओंको अपने ले लिया है। वे एक उत्साही नवयुवक हैं, अपनी के पक्के हैं, अच्छे लेखक हैं और समाजके शुभ न्तक ही नहीं किन्तु उसके दर्दको भी अपने ह लिये हुए हैं। उनके इस *सक्रिय सहयोग* और शान्तिप्रसादजीकी सार्थक सरपरस्तीसे मुझे अनेक का भविष्य अब उज्जवल ही मालूम होता है, जरूर समय पर निकला करेगा और शीघ्र ही उच्चकोटिके आदर्शपत्रका रूप धारण करके लो गौरवान्वित होगा ऐसी मेरी दृढ़ आशा है और उ साथ भावना भी है। इस आयोजनसे पत्रके प्रका और आर्थिक आयोजनादि सम्बन्धी कितनी ही न्ताओंसे मैं मुक्त हो जाऊँगा और उसके द्वारा जिस शक्तिका संरक्षण होगा वह दूसरे संकि सत्कार्योंमें लगसकेगी इसके लिये मैं गोयलीयजी साहू साहब दोनोंका ही हृदयसे आभारी हूं।

ऐसी स्थितिमें अब पत्र बराबर समयपर (महीनेके अन्तमें) प्रकाशित हुआ करेगा यह प्र सुनिश्चित है। और अब उसमें अधिकांश लेख वि के उपयोगके ही नहीं रहेंगे बल्कि सर्वसाधारणोपय लेखोंकी ओर भी यथेष्ट ध्यान दिया जायेगा, जि यह पत्र सभीके लिये उपयोगी—सिद्ध हो स अतः विद्वानोंसे सानुरोध निवेदन है कि वे अब अ लेखोंको शीघ्र ही भेजनेकी कृपा किया करें जि समय पर उनका प्रकाशन हो सके।

नये वर्षकी यह प्रथम किरण पाठकोंके पास पी० से नहीं भेजी जा रही है जिसके भेजे जा पिछली किरणमें सूचना की गईथी आशा है इस कि को पानेके बाद ग्राहकजन शीघ्र ही अपने व चन्देके ५)रु० मनीआर्डरसे भेजनेकी कृपा करेंगे इस तरह वीरसेवामन्दिरको अगली किरण वी० पी से भेजनेकी झंझटसे बचाकर आभारके पात्र ब और समयपर किरणको प्राप्त कर सकेंगे।

—जुगलकिशोर मुख्तार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

विश्वतत्त्व-प्रकाशक — वस्तुतत्त्व-संद्योतक

अनेकान्त

नीतिविरोधध्वंसी लोकव्यवहारवर्तकः सम्यक्।
परमागमस्य बीजं भुवनैकगुरुर्जयत्यनेकान्तः॥

वार्षिक मूल्य ४) — एक किरणका मूल्य ।)

वर्ष ९ किरण १ | वीरसेवामन्दिर (समन्तभद्राश्रम), सरसावा जि० सहारनपुर
पौष, वीरनिर्वाण-संवत् २४७३, विक्रम संवत् २००४ | जनवरी १९४८

समन्तभद्र-भारतीके कुछ नमूने

युक्त्यनुशासन

अवाच्यमित्यत्र च वाच्यभावादवाच्यमेवेत्ययथाप्रतिज्ञम् ।
स्वरूपतश्चेत्पररूपवाचि स्वरूपवाचीति वचो विरुद्धम् ॥२९॥

('अशेष तत्त्व सर्वथा अवाच्य है ऐसी एकान्त मान्यता होने पर) तत्त्व अवाच्य ही है ऐसा कहना अयथाप्रतिज्ञ— प्रतिज्ञाके विरुद्ध— होजाता है; क्योंकि 'अवाच्य' इस पदमें ही वाच्यका भाव है — वह किसी बातको बतलाता है, तब तत्त्व सर्वथा अवाच्य न रहा। यदि यह कहा जाय कि तत्त्व स्वरूपसे अवाच्य ही है तो 'सर्व वचन स्वरूपवाची है' यह कथन प्रतिज्ञाके विरुद्ध पड़ता है। और यदि यह कहा जाय कि पररूपसे तत्त्व अवाच्य ही है तो 'सर्ववचन पररूपवाची है' यह कथन प्रतिज्ञाके विरुद्ध ठहरता है।'

[इस तरह तत्त्व न तो भावमात्र है, न अभावमात्र है, न उभयमात्र है, और न सर्वथा अवाच्य है, इन चारों मिथ्याप्रवादोंका यहां तक निरसन किया गया है। इसी निरसनके सामर्थ्यसे सदवाच्यादि शेष मिथ्याप्रवादोंका भी निरसन हो जाता है। अर्थात् न्यायकी समानतासे यह फलित होता है कि न तो सर्वथा सदवाच्य तत्त्व है, न असदवाच्य, न उभयाऽवाच्य और न अनुभयाऽवाच्य।]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्याऽनृतं वाऽप्यनृताऽनृतं वाऽप्यस्तीह किं वस्त्वतिशायनेन ।
युक्तं प्रतिद्वन्द्यनुबन्धि-मिश्रं न वस्तु तादृक् त्वदृते जिनेदृक् ॥३०॥

'कोई वचन सत्याऽनृत ही है, जो प्रतिद्वन्द्वीसे मिश्र है— जैसे शाखा पर चन्द्रमाको देखो, जिसमें 'चन्द्रमाको देखो' तो सत्य है और 'शाखा पर' यह वचन विसंवादी होनेसे असत्य है—; दूसरा कोई वचन अनृताऽनृत ही है, जो अनुबन्धिसे मिश्र है — जैसे पर्वत पर चन्द्रयुगलको देखो, जिसमें 'चन्द्रयुगल' वचन जिस तरह असत्य है उसी तरह 'पर्वत पर' यह वचन भी विसंवादि-ज्ञानपूर्वक होनेसे असत्य है। इस प्रकार हे वीर जिन ! आप स्याद्वादीके विना वस्तुके अतिशायनसे — सर्वथा प्रकारसे अभिधेयके निर्देश द्वारा— *प्रवर्तमान जो वचन है वह क्या युक्त है ? — युक्त नहीं है।* (*क्योंकि*) स्याद्वादसे शून्य उस प्रकारका अनेकान्त वास्तविक नहीं है—वह सर्वथा एकान्त है और सर्वथा एकान्त अवस्तु होता है।'

सह-क्रमाद्वा विषयाऽल्प-भूरि-भेदेऽनृतं भेदि न चाऽऽत्मभेदात् ।
आत्मान्तरं स्याद्भिदुरं समं च स्याच्चाऽनृतात्माऽनभिलाप्यता च ॥३१॥

'विषय (अभिधेय) का अल्प-भूरि भेद—अल्पाऽनल्प विकल्प—होनेपर अनृत (असत्य) भेदवान होता है—, जैसे जिस वचनमें अभिधेय अल्प असत्य और अधिक सत्य हो उसे 'सत्याऽनृत' कहते हैं, इसमें सत्य-विशेषणसे अनृतको भेदवान् प्रतिपादित किया जाता है। और जिस वचनका अभिधेय अल्प सत्य और अधिक असत्य हो उसे 'अनृताऽनृत' कहते हैं, इसमें अनृत विशेषणसे अनृतको भेदरूप प्रतिपादित किया जाता है। आत्मभेदसे अनृत भेदवान् नहीं होता— क्योंकि सामान्य-अनृतात्माके द्वारा भेद घटित नही होता। अनृतका जो आत्मान्तर—आत्मविशेष लक्षण—है वह भेद-स्वभावको लिये हुए है—विशेषणके भेद-से, और सम (अभेद) स्वभावको लिये हुए है—विशेषणभेदके अभावसे। साथ ही ('च' शब्दसे) उभयस्व-भावको लिये हुए है—हेतुद्वयके अर्पणाक्रमकी अपेक्षा। (इसके सिवाय) अनृतात्मा अनभिलाप्यता (अवक्त-व्यता) को प्राप्त है—एक साथ दोनों धर्मोंका कहा जाना शक्य न होने के कारण; और (द्वितीय 'च' शब्दके प्रयोगसे) भेदि अनभिलाप्य, अभेदि-अनभिलाप्य और उभय (भेदाऽभेदि) अनभिलाप्यरूप भी वह है— अपने अपने हेतुकी अपेक्षा। इसतरह अनृतात्मा अनेकान्तदृष्टिसे भेदाऽभेदकी सप्तभङ्गीको लिये हुए है।'

न सच्च नाऽसच्च न दृष्टमेकमात्मान्तरं सर्व-निषेध-गम्यम् ।
दृष्टं विमिश्रं तदुपाधि-भेदात्स्वप्नेऽपि नैतत्त्वदृषेः परेषाम् ॥३२॥

'तत्त्व न तो सन्मात्र—सत्ताद्वैतरूप—है और न असन्मात्र—सर्वथा अभावरूप—है; क्योंकि परस्पर निरपेक्ष सत्तत्त्व और असत्तत्त्व दिखाई नहीं पड़ता—किसी भी प्रमाणसे उपलब्धि न होनेके कारण उसका होना असम्भव है। इसी तरह (सत्, असत्, एक, अनेकादि) सर्वधर्मोंके निषेधका विषयभूत कोई एक आत्मान्तर—परमब्रह्म—तत्त्वभी नहीं देखा जाता—उसका भी होना असम्भव है। हां, सत्वाऽसत्वसे विमिश्र परस्पराऽपेक्ष-रूप तत्त्व जरूर देखा जाता है और वह उपाधिके—स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप तथा परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप विशेषणोंके भेदसे—है अर्थात् सम्पूर्णतत्त्व स्यात् सत्रूप ही है, स्वरूपादिचतुष्टयकी अपेक्षा; स्यात् असद्रूप ही है, पररूपादि चतुष्टयकी अपेक्षा; स्यात् उभयरूप ही है, स्व-पररूपादिचतुष्टय-द्वयके क्रमार्पणाकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपेक्षा; स्यात् अवाच्यरूप ही है, स्व-पररूपादि-चतुष्टयद्वयके सहार्पणकी अपेक्षा; स्यात्सदवाच्यरूप है, स्व-रूपादि-चतुष्टयकी अपेक्षा तथा युगपत्स्व-पर-स्वरूपादिचतुष्टयके कथनकी अशक्तिकी अपेक्षा; स्यात् असदवाच्य रूप ही है, पररूपादि-चतुष्टयकी अपेक्षा तथा स्व-पररूपादि चतुष्टयोंके युगपत् कहनेकी अशक्तिकी अपेक्षा; और स्यात् सदसदवाच्यरूप है, क्रमार्पित स्वपररूपादि-चतुष्टय-द्वयकी अपेक्षा तथा सहार्पित उक्त चतुष्टयद्वय-की अपेक्षा। इस तरह सत् असत् आदिरूपविमिश्रित तत्त्व देखा जाता है और इसलिये हे वीर जिन ! वस्तुके अतिशायनसे (सर्वथा निर्देश द्वारा) किञ्चित् सत्यानृतरूप और किञ्चित् असत्याऽनृतरूप वचन आपके ही युक्त है। आप ऋषिराजसे भिन्न जो दूसरे सर्वथा सत् आदि एकान्तवादी हैं उनके यह वचन अथवा इस रूप तत्त्व स्वप्नमें भी सम्भव नहीं है।'

(यदि यह कहाजाय कि निर्विकल्पकप्रत्यक्ष निरंश वस्तुका प्रतिभासी ही है, धर्मि-धर्मात्मकरूप जो सांश वस्तु है उसका प्रतिभासी नहीं—उसका प्रतिभासी वह सविकल्पक ज्ञान है जो निर्विकल्पक प्रत्यक्षके अनन्तर उत्पन्न होता है; क्योंकि उसीसे यह धर्मी है यह धर्म है ऐसे धर्मि-धर्म-व्यवहारकी प्रवृत्ति पाई जाती है। अतः सकल कल्पनाओंसे रहित प्रत्यक्षके द्वारा निरंश स्वलक्षणका जो अदर्शन बतलाया जाता है वह असिद्ध है, तब ऐसे असिद्ध अदर्शन साधनसे उस निरंश वस्तुका अभाव कैसे सिद्ध किया जासकता है ? बौद्धोंके इस प्रश्नको लेकर आचार्यमहोदय अगली कारिकाको अवतरित करते हुए कहते हैं—)

प्रत्यक्ष-निर्देशवदप्यसिद्धमकल्पकं ज्ञापयितुं ह्यशक्यम् ।
विना च सिद्धेर्न च लक्षणार्थो न तावक-द्वेषिणि वीर ! सत्यम् ॥२२॥

'जो प्रत्यक्षके द्वारा निर्देशको प्राप्त (निर्दिष्ट होनेवाला) हो—प्रत्यक्ष ज्ञानसे देखकर 'यह नीलादिक है' इस प्रकारके वचन-विना ही अंगुलीसे जिसका प्रदर्शन कियाजाता हो—ऐसा तत्त्वभी असिद्ध है; क्योंकि जो प्रत्यक्ष अकल्पक है—सभी कल्पनाओंसे रहित निर्विकल्पक है—वह दूसरोंको (संशयित विनेयों अथवा संदिग्ध व्यक्तियोंको) तत्त्वके बतलाने-दिखलानेमें किसी तरह भी समर्थ नहीं होता है। (इसके सिवाय) निर्विकल्पक प्रत्यक्ष भी असिद्ध है; क्योंकि (किसी भी प्रमाणके द्वारा) उसका ज्ञापन अशक्य है—प्रत्यक्षप्रमाण-से तो वह इस लिये ज्ञापित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह परप्रत्यक्षके द्वारा असंवेद्य है। और अनुमान प्रमाणके द्वारा भी उसका ज्ञापन नहीं बनता; क्योंकि उस प्रत्यक्षके साथ अविनाभावी लिङ्ग (साधन) का ज्ञान असंभव है—दूसरे लोग जिन्हें लिङ्ग-लिङ्गीके सम्बन्धका ग्रहण नहीं हुआ उन्हें अनुमानके द्वारा उसे कैसे बतलाया जा सकता है ? नहीं बतलाया जा सकता। और जो स्वयं प्रतिपन्न है—निर्विकल्पक प्रत्यक्ष तथा उसके अविनाभावी लिङ्गको जानता है—उसको निर्विकल्पक प्रत्यक्षका ज्ञापन करानेके लिये अनुमान निरर्थक है। समारोपादिकी—भ्रमोत्पत्ति और अनुमानके द्वारा उसके व्यवच्छेदकी—बात कहकर उसे सार्थक सिद्ध नहीं किया जा सकता; क्योंकि साध्य-साधनके सम्बन्धसे जो स्वयं अभिज्ञ है उसके तो समारोपका होना ही असंभव है और जो अभिज्ञ नहीं है उसके साध्य साधन सम्बन्धका ग्रहण ही सम्भव नहीं है, और इसलिये गृहीतकी विस्मृति जैसी कोई बात नहीं बन सकती। इस तरह अकल्पक प्रत्यक्षका कोई ज्ञापक न होनेसे उसकी व्यवस्था नहीं बनती; तब उसकी सिद्धि कैसे हो सकती है ? और जब उसकी ही सिद्धि नहीं तब उसके द्वारा निर्दिष्ट होनेवाले निरंश वस्तुतत्त्वकी सिद्धि तो कैसे बन सकती है ? नहीं बन सकती। अतः दोनों ही असिद्ध ठहरते हैं।

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

प्रत्यक्षकी सिद्धिके विना उसका लक्षणार्थ भी नहीं बन सकता—'जो ज्ञान कल्पनासे रहित है वह प्रत्यक्ष है' ('प्रत्यक्षं कल्पनापोढम्' 'कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षम्') ऐसा बौद्धोंके द्वारा किये गये प्रत्यक्ष-लक्षणका जो अर्थ प्रत्यक्षका बोध कराना है वह भी घटित नहीं हो सकता। अत: हे वीर भगवन्! आपके अनेकान्तात्मक स्याद्वादशासनका जो द्वेषी है—सर्वथा सत् आदिरूप एकान्तवाद है—उसमें सत्य घटित नहीं होता—एकान्तत: सत्यको सिद्ध नहीं किया जा सकता।'

कालान्तरस्थे क्षणिके ध्रुवे वाऽपृथक्पृथक्त्वाऽवचनीयतायाम्।
विकारहाने न च कर्तृ-कार्ये वृथा श्रमोऽयं जिन! विद्विषां ते ॥३४॥

'पदार्थके कालान्तरस्थायी होने पर—जन्मकालसे अन्यकालमें ज्योंका त्यों अपरिणामीरूपसे अवस्थित रहने पर—, चाहे वह अभिन्न हो भिन्न हो या अनिर्वचनीय हो, कर्ता और कार्य दोनों भी उसी प्रकार नहीं बन सकते जिस प्रकार कि पदार्थके सर्वथा क्षणिक अथवा ध्रुव (नित्य) होने पर नहीं बनते[१]; क्योंकि तब विकारकी निवृत्ति होती है— विकार परिणामको कहते हैं, जो स्वयं अवस्थित द्रव्यके पूर्वाकारके परित्याग, स्वरूपके अत्याग और उत्तरोत्तराकारके उत्पादरूप होता है। विकारकी निवृत्ति क्रम और अक्रमको निवृत्त करती है; क्योंकि क्रम अक्रमकी विकारके साथ व्याप्ति (अविनाभाव सम्बन्धकी प्राप्ति) है। क्रम-अक्रमकी निवृत्ति क्रियाको निवृत करती है; क्योंकि क्रियाके साथ उनकी व्याप्ति है। क्रियाका अभाव होने पर कोई कर्त्ता नहीं बनता; क्योंकि क्रियाधिष्ठ स्वतंत्र द्रव्यके ही कर्तृत्वकी सिद्धि होती है। और कर्ताके अभावमें कार्य नहीं बन सकता— स्वयं समीहित स्वर्गाऽपवर्गादिरूप किसी भी कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। (अत:) हे वीर जिन! आपके द्वेषियोंका— आपके अनेकान्तात्मक स्याद्वाद-शासनसे द्वेष रखनेवाले (बौद्ध, वैशेषिक, नैय्यायिक, सांख्य आदि) सर्वथा एकान्तवादियोंका— यह श्रम-स्वर्गाऽपवर्गादिकी प्राप्तिके लिये किया गया यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि आदि रूप संपूर्ण दृश्यमान तपोलक्षण प्रयास—व्यर्थ है— उससे सिद्धान्तत: कुछ भी साध्यकी सिद्धि नहीं बन सकती।'

[यहां तकके इस सब कथन-द्वारा आचार्य महोदय स्वामी समन्तभद्रने अन्य सब प्रधान प्रधान मतोंको सदोष सिद्ध करके 'समन्तदोषं मतमन्यदीयम्' इस आठवीं कारिकागत अपने वाक्यको समर्थित किया है; साथ ही, 'त्वदीयं मतमद्वितीयम्' (आपका मत-शासन अद्वितीय है) इस छठी कारिकागत अपने मन्तव्यको प्रकाशित किया है। और इन दोनोंके द्वारा 'त्वमेव महान् इतीयत्प्रतिवक्तुमीशाः वयम्' ('आप ही महान् हैं' इतना बतलानेके लिये हम समर्थ हैं) इस चतुर्थ कारिकागत अपनी प्रतिज्ञाको सिद्ध किया है।]

---

१ देखो, इसी ग्रन्थकी कारिका ८, १२, आदि तथा देवागमकी कारिका ३७, ४१ आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रत्नकरण्डके कर्तृत्व-विषयमें मेरा विचार और निर्णय

[सम्पादकीय]

रत्नकरण्डश्रावकाचारके कर्तृत्व-विषयकी वर्तमान चर्चाको उठे हुए चारवर्ष हो चुके—प्रोफेसर हीरालाल जी एम० ए० ने 'जैन इतिहासका एक विलुप्त अध्याय' नामक निबन्धमें इसे उठाया था, जो जनवरी सन् १६४४ में होनेवाले अखिल भारतवर्षीय प्राच्य सम्मेलनके १२वें अधिवेशनपर बनारसमें पढ़ा गया था। उस निबन्धमें प्रो० सा० ने, अनेक प्रस्तुत प्रमाणोंसे पुष्ट होती हुई प्रचलित मान्यताके विरुद्ध अपने नये मतकी घोषणा करते हुए, यह बतलाया था कि 'रत्नकरण्ड उन्हीं ग्रन्थकार (स्वामी समन्तभद्र) की रचना कदापि नहीं हो सकती जिन्होंने आप्तमीमांसा लिखी थी; क्योंकि उसके 'क्षुत्पिपासा' नामक पद्यमें दोषका जो स्वरूप समझाया गया है वह आप्तमीमांसाकारके अभिप्रायानुसार हो ही नहीं सकता।' साथ ही यह भी सुझाया था कि इस ग्रन्थका कर्ता रत्नमालाके कर्ता शिवकोटिका गुरु भी हो सकता है। इसी घोषणाके प्रतिवादरूपमें न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी कोठिया ने जुलाई सन १६४४ में 'क्या रत्नकरण्डश्रावकाचार स्वामी समन्तभद्रकी कृति नहीं है' नामका एक लेख लिखकर अनेकान्तमें इस चर्चाका प्रारम्भ किया था और तबसे यह चर्चा दोनों विद्वानोंके उत्तर प्रत्युत्तर-रूपमें बराबर चली आ रही है। कोठियाजीने अपनी लेखमालाका उपसंहार अनेकान्तकी गतकिरण १०-११ में किया है और प्रोफेसर साहब अपनी लेखमालाका उपसंहार इसी किरणमें अन्यत्र प्रकाशित 'रत्नकरण्ड और आप्तमीमांसाका भिन्नकर्तृत्व' लेखमें कर रहे हैं। दोनों ही पक्षके लेखोंमें यद्यपि कहीं कहीं कुछ पिष्ट-पेषण तथा खींचतानसे भी काम लिया गया है और एक दूसरेके प्रति आक्षेपपरक भाषाका भी प्रयोग हुआ है, जिससे कुछ कटुताको अवसर मिला। यह सब यदि न हो पाता तो ज्यादह अच्छा रहता। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि दोनों विद्वानोंने प्रकृत विषयको सुलझानेमें काफ़ी दिलचस्पीसे काम लिया है और उनके अन्वेषणात्मक परिश्रम एवं विवेचनात्मक प्रयत्नके फलस्वरूप कितनी ही नई बातें पाठकोंके सामने आई हैं। अच्छा होता यदि प्रोफेसर साहब न्यायाचार्यजीके पिछले लेखकी नवोद्भावित युक्तियों का उत्तर देते हुए अपनी लेखमालाका उपसंहार करते, जिससे पाठकोंको यह जाननेका अवसर मिलता कि प्रोफेसर साहब उन विशेष युक्तियोंके सम्बन्धमें भी क्या कुछ कहना चाहते हैं। हो सकता है कि प्रो० सा० के सामने उन युक्तियोंके सम्बन्धमें अपनी पिछली बातोंके पिष्टपेषणके सिवाय अन्य कुछ विशेष एवं समुचित कहनेके लिये अवशिष्ट न हो और इसीलिये उन्होंने उनके उत्तरमें न पड़कर अपनी उन चार आपत्तियोंको ही स्थिर घोषित करना उचित समझा हो, जिन्हें उन्होंने अपने पिछले लेख (अनेकान्त वर्ष ८ किरण ३) के अन्तमें अपनी युक्तियोंके उपसंहार-रूपमें प्रकट किया था। और सम्भवतः इसी बातको दृष्टिमें रखते हुए उन्होंने अपने वर्तमान लेखमें निम्न वाक्योंका प्रयोग किया हो:—

"इस विषयपर मेरे 'जैन इतिहासका एक विलुप्त अध्याय' शीर्षक निबन्धसे लगाकर अभी तक मेरे और पं० दरबारीलालजी कोठियाके छह लेख प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें उपलब्ध साधक-बाधक प्रमाणोंका विवेचन किया जा चुका है। अब कोई नई बात सन्मुख आनेकी अपेक्षा पिष्टपेषण ही अधिक होना प्रारम्भ हो गया है और मौलिकता केवल कटु शब्दोंके प्रयोगमें शेष रह गई है।"

(आपत्तियोंके पुनरुल्लेखानन्तर) "इस प्रकार रत्नकरण्डश्रावकाचार और आप्तमीमांसाके एक कर्तृत्व के विरुद्ध पूर्वोक्त चारों आपत्तियां ज्योंकी त्यों आज भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खड़ी हैं, और जो कुछ ऊहापोह अब तक हुई है उससे वे और भी प्रबल व अकाट्य सिद्ध होती हैं।"

कुछ भी हो और दूसरे कुछ ही समझते रहें, परन्तु इतना स्पष्ट है कि प्रो० साहब अपनी उक्त चार आपत्तियोंमेंसे किसीका भी अब तक समाधान अथवा समुचित प्रतिवाद हुआ नहीं मानते; बल्कि वर्तमान ऊहापोहके फलस्वरूप उन्हें वे और भी प्रबल एवं अकाट्य समझने लगे हैं। अस्तु।

अपने वर्तमान लेखमें प्रो० साहबने मेरे दो पत्रों और मुझे भेजे हुए अपने एक पत्रको उद्धृत किया है इन पत्रोंको प्रकाशित देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई—उनमेंसे किसीके भी प्रकाशनसे मेरे क्रुद्ध होने जैसी तो कोई बात ही नहीं हो सकती थी, जिसकी प्रोफेसर साहबने अपने लेखमें कल्पना की है; क्योंकि उनमें प्राइवेट जैसी कोई बात नहीं है, मैं तो स्वयं ही उन्हें 'समीचीनधर्मशास्त्र' की अपनी प्रस्तावनामें प्रकाशित करना चाहता था—चुनांचे लेखके साथ भेजे हुए पत्रके उत्तरमें भी मैंने प्रो० साहबको इस बातकी सूचना कर दी थी। मेरे प्रथम पत्रको, जो कि रत्नकरण्डके 'क्षुत्पिपासा' नामक छठे पद्यके संबन्धमें उसके ग्रन्थका मौलिक अङ्ग होने-न होने-विषयक गम्भीर प्रश्नको लिये हुए है, उद्धृत करते हुए प्रोफेसर साहबने उसे अपनी "प्रथम आपत्तिके परिहारका एक विशेष प्रयत्न" बतलाया है, उसमें जो प्रश्न उठाया है उसे 'बहुत ही महत्वपूर्ण' तथा 'रत्नकरण्डके कर्तृत्व-विषयसे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाला घोषित किया है और 'तीनों ही पत्रोंको अपने लेखमें प्रस्तुत करना वर्तमान विषयके निर्णयार्थ अत्यन्त आवश्यक' सूचित किया है। साथ ही मुझसे यह जानना चाहा है कि मैंने अपने प्रथम पत्रके उत्तरमें प्राप्त विद्वानोंके पत्रों आदिके आधारपर उक्त पद्यके विषयमें मूलका अङ्ग होने न-होनेकी बाबत और समूचे ग्रन्थ (रत्नकरण्ड) के कर्तृत्व विषयमें क्या कुछ निर्णय किया है। इसी जिज्ञासाको, जिसका प्रो० सा० के शब्दोंमें प्रकृत विषयसे रुचि रखनेवाले दूसरे हृदयोंमें भी उत्पन्न होना स्वाभाविक है, प्रधानता लेकर ही मैं इस लेखके लिखनेमें प्रवृत्त हो रहा हूं।

सबसे पहले मैं अपने पाठकोंको यह बतला देना चाहता हूं कि प्रस्तुत चर्चाके वादी-प्रतिवादी रूपमें स्थित दोनों विद्वानोंके लेखोंका निमित्त पाकर मेरी प्रवृत्ति रत्नकरण्डके उक्त छठे पद्यपर सविशेषरूपसे विचार करने एवं उसकी स्थितिको जांचनेकी ओर हुई और उसके फलस्वरूप ही मुझे वह दृष्टि प्राप्त हुई जिसे मैंने अपने उस पत्रमें व्यक्त किया है जो कुछ विद्वानों को उनका विचार मालूम करनेके लिये भेजा गया था और जिसे प्रोफेसर साहबने विशेष महत्वपूर्ण एवं निर्णयार्थ आवश्यक समझकर अपने वर्तमान लेखमें उद्धृत किया है। विद्वानोंको उक्त पत्रका भेजा जाना प्रोफेसर साहबकी प्रथम आपत्तिके परिहारका कोई खास प्रयत्न नहीं था, जैसा कि प्रो० साहबने समझा है; बल्कि उसका प्रधान लक्ष्य अपने लिये इस बातका निर्णय करना था कि 'समीचीन धर्मशास्त्र' में जो कि प्रकाशनके लिये प्रस्तुत है, उसके प्रति किस प्रकारका व्यवहार किया जाय—उसे मूलका अङ्ग मान लिया जाय या प्रक्षिप्त। क्योंकि रत्नकरण्डमें 'उत्सन्नदोष आप्त'के लक्षणरूपमें उसकी स्थितिके स्पष्ट होनेपर अथवा 'प्रकीर्त्यते'के स्थानपर 'प्रदोषमुक' जैसे किसी पाठका आविर्भाव होनेपर मैं आप्तमीमांसाके साथ उसका कोई विरोध नहीं देखता हूं। और इसी लिये तत्सम्बन्धी अपने निर्णयादिको उस समय पत्रोंमें प्रकाशित करनेकी कोई जरूरत नहीं समझी गई, वह सब समीचीनधर्मशास्त्रकी अपनी प्रस्तावनाके लिये सुरक्षित रक्खा गया था। हां, यह बात दूसरी है कि उक्त 'क्षुत्पिपासा' नामक पद्यके प्रक्षिप्त होने अथवा मूल ग्रन्थका वास्तविक अङ्ग सिद्ध न होनेपर प्रोफेसर साहबकी प्रकृत चर्चाका मूलाधार ही समाप्त हो जाता है; क्योंकि रत्नकरण्डके इस एक पद्यको लेकर ही उन्होंने आप्तमीमांसागत दोष-स्वरूपके साथ उसके विरोधकी कल्पना करके दोनों ग्रन्थोंके भिन्न कर्तृत्वकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चर्चाको उठाया था—शेष तीन आपत्तियां तो उसमें बादको पुष्टि प्रदान करने के लिये शामिल होती रही हैं। और इस दृष्टिसे प्रोफेसर साहबने मेरे उस पत्र-प्रेषणादिको यदि अपनी प्रथम आपत्तिके परिहार-का एक विशेष प्रयत्न समझ लिया है तो वह स्वाभाविक है, उसके लिये मैं उन्हें कोई दोष नहीं देता। मैंने अपनी दृष्टि और स्थितिका स्पष्टीकरण कर दिया है।

मेरा उक्त पत्र जिन विद्वानोंको भेजा गया था उनमेंसे कुछका तो कोई उत्तर ही प्राप्त नहीं हुआ, कुछने अनवकाशादिके कारण उत्तर देनेमें अपनी असमर्थता व्यक्त की, कुछने अपनी सहमति प्रकट की और शेषने असहमति। जिन्होंने सहमति प्रकट की उन्होंने मेरे कथनको 'बुद्धिगम्य तर्कपूर्ण' तथा युक्तिवादको 'अतिप्रबल' बतलाते हुए उक्त छठे पद्यको संदिग्धरूपमें तो स्वीकार किया है; परन्तु जब तक किसी भी एक प्राचीन प्रतिमें उसका अभाव न पाया जाय तब तक उसे 'प्रक्षिप्त' कहनेमें अपना संकोच व्यक्त किया है। और जिन्होंने असहमति प्रकट की है उन्होंने उक्त पद्यको ग्रन्थका मौलिक अङ्ग बतलाते हुए उसके विषयमें प्रायः इतनी ही सूचना की है कि वह पूर्व पद्यमें वर्णित आप्तके तीन विशेषणोंमेंसे 'उत्सन्नदोष, विशेषणके स्पष्टीकरण अथवा व्याख्यादिको लिये हुए है। और उस सूचनादि पर से यह पाया जाता है कि वह उनके सरसरी विचारका परिणाम है— प्रश्नके अनुरूप विशेष ऊहापोहसे काम नहीं लिया गया अथवा उसके लिये उन्हें यथेष्ट अवसर नहीं मिल सका। चुनांचे कुछ विद्वानोंने उसकी सूचना भी अपने पत्रोंमें की है जिसके दो नमूने इस प्रकार हैं :—

"रत्नकरण्डश्रावकाचारके जिस श्लोककी ओर आपने ध्यान दिलाया है, उसपर मैंने विचार किया मगर मैं अभी किसी नतीजेपर नहीं पहुंच सका। श्लोक ५ में उच्छिन्नदोष, सर्वज्ञ और आगमेशीको आप्त कहा है, मेरी दृष्टिमें उच्छिन्नदोषकी व्याख्या एवं पुष्टि श्लोक ६ करता है और आगमेशीकी व्याख्या श्लोक ७ करता है। रही सर्वज्ञता, उसके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा है इसका कारण यह जान पड़ता है कि आप्त-मीमांसामें उसकी पृथक् विस्तारसे चर्चा की है इसलिये उसके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा। श्लोक ६ में यद्यपि सब दोष नहीं आते, किन्तु दोषोंकी संख्या प्राचीन परम्परामें कितनी थी यह खोजना चाहिये। श्लोककी शब्दरचना भी समन्तभद्रके अनुकूल है, अभी और विचार करना चाहिये।" (यह पूरा उत्तर पत्र है)।

"इस समय बिल्कुल फुरसतमें नहीं हूं······ यहां तक कि दो तीन दिन बाद आपके पत्रको पूरा पढ़ सका।······ पद्यके बारेमें अभी मैंने कुछ भी नहीं सोचा था, जो समस्यायें आपने उसके बारेमें उपस्थित की हैं वे आपके पत्रको देखनेके बादही मेरे सामने आई हैं, इसलिये इसके विषयमें जितनी गहराईके साथ आप सोच सकते हैं मैं नहीं, और फिर मुझे इस समय गहराईके साथ निश्चिंत होकर सोचनेका अवकाश नहीं इसलिये जो कुछ मैं लिख रहा हूं उसमें कितनी दृढ़ता होगी यह मैं नहीं कह सकता फिर भी आशा है कि आप मेरे विचारों पर ध्यान देंगे।"

हां, इन्हीं विद्वानों मेंसे तीनने छठे पद्यको संदग्धि अथवा प्रक्षिप्त करार दिये जाने पर अपनी कुछ शंका अथवा चिन्ता भी व्यक्त की है, जो इस प्रकार है:—

"(छठे पद्यके संदग्धि होनेपर) ७वें पद्यकी संगति आप किस तरह बिठलाएंगे और यदि ७वें की स्थिति संदग्ध होजाती है तो ८वां पद्य भी अपने आप संदग्धिताकी कोटिमें पहुंच जाता है।"

"यदि पद्य नं० ६ प्रकरणके विरुद्ध है, तो ७ और ८ भी संकटमें ग्रस्त हो जायेंगे।"

"नं० ६ के पद्यको टिप्पणीकारकृत स्वीकार किया जाय तो मूलग्रन्थकारद्वारा लक्षणमें ३ विशेषण देकर भी ७. ८में दोका ही समर्थन या स्पष्टीकरण किया गया पूर्व विशेषणके सम्बन्धमें कोई स्पष्टीकरण नहीं किया यह दोषापत्ति होगी।"

इन तीनों आशंकाओं अथवा आपत्तियोंका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आशय प्राय: एक ही है और वह यह कि यदि छठे पद्यको असंगत कहा जावेगा तो ७वें तथा ८वें पद्यको भी असंगत कहना होगा। परन्तु बात ऐसी नहीं है। छठा पद्य ग्रन्थका अंग न रहने पर भी ७वें तथा ८वें पद्यको असंगत नहीं कहा जा सकता; क्योंकि ७वें पद्यमें सर्वज्ञकी, आगमेशीकी अथवा दोनों विशेषणोंकी व्याख्या या स्पष्टीकरण नहीं है, जैसाकि अनेक विद्वानोंने भिन्न भिन्न रूपमें उसे समझ लिया है। उसमें तो उपलक्षणरूपसे आप्तकी नाम-मालाका उल्लेख है, जिसे 'उपलाल्यते' पदके द्वारा स्पष्ट घोषित भी किया गया है, और उसमें आप्तके तीनों ही विशेषणोंको लक्ष्यमें रखकर नामोंका यथावश्यक संकलन किया गया है। इस प्रकारकी नाम-माला देनेकी प्राचीन समयमें कुछ पद्धति जान पड़ती है, जिसका एक उदाहरण पूर्ववर्ती आचार्य कुन्दकुन्दके 'मोक्खपाहुड' में और दूसरा उत्तरवर्ती आचार्य पूज्यपाद (देवनन्दी) के 'समाधितंत्र' में पाया जाता है। इन दोनों ग्रन्थोंमें परमात्माका स्वरूप देनेके अनन्तर उसकी नाममालाका जो कुछ उल्लेख किया है वह ग्रन्थ क्रमसे इस प्रकार है :—

मलरहिओ कलचत्तो अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा
परमेट्ठी परमजिणो सिवंकरो सासओ सिद्धो ॥६॥

निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः ।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः ॥६॥

इन पद्योंमें कुछ नाम तो समान अथवा समानार्थक हैं और कुछ एक दूसरेसे भिन्न हैं, और इससे यह स्पष्ट सूचना मिलती है कि परमात्माको उपलक्षित करनेवाले नाम तो बहुत हैं, ग्रन्थकारोंने अपनी अपनी रुचि तथा आवश्यकताके अनुसार उन्हें अपने अपने ग्रन्थोंमें यथास्थान ग्रहण किया है। *समाधितंत्र*ग्रन्थके टीकाकार आचार्य प्रभाचन्द्रने, 'तद्वाचिकां नाममालां दर्शयन्नाह' इस प्रस्तावना-वाक्यके द्वारा यह सूचित भी किया है कि इस छठे श्लोकमें परमात्माके नामकी वाचिका नाममालाका निर्देश है। रत्नकरण्डकी टीकामें भी प्रभाचन्द्राचार्यने 'आप्तस्य वाचिकां नाममालां प्ररूपयन्नाह' इस प्रस्तावना वाक्यके द्वारा यह सूचना की है। ७वें पद्यमें आप्तकी नाममालाका निरूपण है। परन्तु उन्होंने साथमें आप्तका एक विशेषण 'उत्कदोषैर्विवर्जितस्य' भी दिया है, जिसका कारण पूर्वमें उत्सन्न-दोषकी दृष्टिसे आप्तके लक्षणात्मक पद्यका होना कहा जा सकता है; अन्यथा वह नाममाला एकमात्र 'उत्सन्नदोषआप्त' की नहीं कही जा सकती; क्योंकि उसमें 'परंज्योति' और 'सर्वज्ञ' जैसे नाम सर्वज्ञ आप्तके, 'सार्वः' और 'शास्ता' जैसे नाम आगमेशी (परमहितोपदेशक) आप्तके स्पष्ट वाचक भी मौजूद हैं। वास्तवमें वह आप्तके तीनों विशेषणोंको लक्ष्यमें रखकर ही संकलित की गई है, और इसलिये ७वें पद्यकी स्थिति ५वें पद्यके अनन्तर ठीक बैठ जाती है, उसमें असंगति जैसी कोई भी बात नहीं है। ऐसी स्थितिमें ७वें पद्यका नम्बर ६ होजाता है और तब पाठकोंको यह जानकर कुछ आश्चर्यसा होगा कि इन नाममालावाले पद्योंका तीनों ही ग्रन्थोंमें ६ठा नम्बर पड़ता है, जो किसी आकस्मिक अथवा रहस्यमय-घटनाका ही परिणाम कहा जा सकता है।

इस तरह ६ठे पद्यके अभावमें जब ७वां पद्य असंगत नहीं रहता तब ८वां पद्य असंगत हो ही नहीं सकता; क्योंकि वह ७वें पद्यमें प्रयुक्त हुए 'विरागः' और 'शास्ता' जैसे विशेषण-पदोंके विरोधकी शंकाके समाधानरूपमें है।

इसके सिवाय, प्रयत्न करने पर भी रत्नकरण्ड-की ऐसी कोई प्राचीन प्रतियां मुझे अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है, जो प्रभाचन्द्रकी टीकासे पहले की अथवा विक्रमकी ११ वीं शताब्दीकी या उससे भी पहलेकी लिखी हुई हों। अनेकवार कोल्हापुरके प्राचीनशास्त्र भण्डारको टटोलनेके लिये डा० ए०एन० उपाध्ये जीसे निवेदन किया गया; परन्तु हरबार यही उत्तर मिलता रहा कि भट्टारकजी मठमें मौजूद नहीं हैं, बाहर गये हुये हैं— वे अक्सर बाहर ही घूमा करते हैं— और बिना उनकी मौजूदगीके मठके शास्त्रभंडारको देखा नहीं जा सकता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसी हालतमें रत्नकरण्डका छठा पद्य अभी तक मेरे विचाराधीन ही चला जाता है। फिलहाल, वर्तमान चर्चाके लिये, मैं उसे मूलग्रन्थका अंग मानकर ही प्रोफेसर सा० की चारों आपत्तियोंपर अपना विचार और निर्णय प्रकट कर देना चाहता हूं। और वह निम्नप्रकार है। (अगली किरणमें समाप्य)

रत्नकरण्ड और आप्तमीमांसाका भिन्नकर्तृत्व

(लेखक— डा० हीरालाल जैन, एम० ए०)

रत्नकरण्डश्रावकाचार और आप्तमीमांसा एक ही आचार्यकी रचनाएं हैं, या भिन्न भिन्न, इस विषयपर मेरे 'जैनइतिहासका एक विलुप्त अध्याय' शीर्षक निबन्धसे लगाकर अभी तक मेरे और *पं० दरबारीलाल*जी कोठियाके छह लेख प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें उपलब्ध साधक-बाधक प्रमाणों का विवेचन किया जा चुका है। अब कोई नई बात सन्मुख आनेकी अपेक्षा पिष्टपेषण ही अधिक होना प्रारम्भ हो गया है और मौलिकता केवल कटु-वाक्योंके प्रयोगमें शेष रह गई है। अतएव मैं प्रस्तुत लेखमें संक्षेपत: केवल यह प्रकट करना चाहता हूं कि उक्त दोनों रचनाओंको एक ही आचार्य की कृतियां माननेमें जो आपत्तियां उपस्थित हुई थीं उनका कहांतक समाधान हो सका है।

मैंने अपने गत लेखके उपसंहारमें चार आपत्तियोंका उल्लेख किया था जिनके कारण रत्नकरण्ड और आप्तमीमांसाका एककर्तृत्व सिद्ध नहीं होता। प्रथम आपत्ति यह थी कि रत्नकरण्डानुसार आप्तमें क्षुत्पिपासादि असातावेदनीय कर्मजन्य वेदनाओंका अभाव होता है, जबकि आप्तमीमांसाकी कारिका ९३ में वीतराग सर्वज्ञके दुःखकी वेदना स्वीकार की गई है जो कि कर्म सिद्धान्तकी व्यवस्थाओंके अनुकूल है। पंडितजीका मत है कि उक्त कारिकाके वीतराग विद्वान् मुनिसे छठे गुणस्थानवर्ती साधुका अभिप्राय है। किन्तु न तो वे यह बतला सके कि छठे गुणस्थानीय साधुको वीतराग व विद्वान् विशेषण लगानेका क्या प्रयोजन है, और न यह प्रमाणित कर सके कि उक्त गुणस्थानमें सुख दु:खकी वेदना होते हुए पाप-पुण्यके बन्धका अभाव कैसे संभव है। और इसी बातपर उक्त कारिकाकी युक्ति निर्भर है। अत: उन दोनों ग्रन्थोंके एक-कर्तृत्व स्वीकार करनेमें यह विरोध बाधक है।

दूसरी आपत्ति यह थी कि शक संवत् ९४७ से पूर्वका कोई उल्लेख रत्नकरण्डश्रा० का नहीं पाया जाता और न उसका आप्तमीमांसाके साथ एककर्तृत्व संबन्धी कोई स्पष्ट प्राचीन प्रामाणिक उल्लेख उपलब्ध है। यह आपत्ति भी जैसीकी तैसी उपस्थित है।

तीसरी आपत्ति यह थी कि रत्नकरण्डका जो सर्व प्रथम उल्लेख शक संवत् ९४७ में वादिराज कृत पार्श्वनाथ चरितमें पाया जाता है उसमें वह स्वामी समन्तभद्र-कृत न कहा जाकर योगीन्द्र-कृत कहा गया है। और वह उल्लेख स्वामी-कृत देवागम (आप्तमीमांसा) और देव-कृत शब्दशास्त्रके उल्लेखोंके पश्चात् किया गया है चूंकि हरिवंशपुराण व आदिपुराण जैसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथोंमें 'देव' शब्दद्वारा देवनन्दि पूज्यपाद और उनके व्याकरण ग्रंथ जैनेन्द्र व्याकरणका ही उल्लेख पाया जाता है, अतः स्पष्ट है कि वादिराजने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी उस बीचके श्लोक द्वारा देवनन्दिकृत जैनेन्द्र-व्याकरणका ही उल्लेख किया है। और उसके व्यवधान होनेसे योगीन्द्रकृत रत्नकरण्डका देवागमसे एककर्तृत्व कदापि वादिराज-सम्मत नहीं कहा जा सकता। इस आपत्तिको पंडितजीने भी स्वीकार किया है, किन्तु उनकी कल्पना है कि यहां 'देव' से अभिप्राय स्वामी समन्तभद्रका ग्रहण करना चाहिये। किन्तु इसके समर्थनमें उन्होंने जो उल्लेख प्रस्तुत किये हैं उन सबमें 'देव' पद 'समन्तभद्र' पदके साथ साथ पाया जाता है। ऐसा कोई एक भी उल्लेख नहीं जहां केवल 'देव' शब्दसे समन्तभद्रका अभिप्राय प्रकट किया गया हो।

योगीन्द्रसे समन्तभद्रका अभिप्राय ग्रहण करनेके समर्थनमें उन्होंने प्रभाचन्द्रकृत कथाकोषके अवतरण प्रस्तुत किये हैं जिनमें समन्तभद्रको योगी व योगीन्द्र कहा गया है। किन्तु पंडितजीने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि उक्त कथानकमें समन्तभद्रको केवल उनके कपटवेषमें ही योगी या योगीन्द्र कहा है, उनके जैनवेषमें कहीं भी उक्त शब्दका प्रयोग नहीं पाया जाता। सबसे बड़ी आपत्ति तो यह है कि समन्तभद्रके ग्रन्थकर्ताके रूपसे सैकड़ों उल्लेख या तो स्वामी या समन्तभद्र नामसे पाये जाते हैं, किन्तु 'देव' या 'योगीन्द्र' रूपसे कोई एक भी उल्लेख अभीतक सन्मुख नहीं लाया जा सका। फिर उनका बनाया हुआ न तो कोई शब्द-शास्त्र उपलब्ध है और न उसके कोई प्राचीन प्रामाणिक उल्लेख पाये जाते हैं। इसके विपरीत देवनन्दिकी 'देव' नामसे प्रख्याति साहित्यमें प्रसिद्ध है, और उनका बनाया हुआ महत्त्वपूर्ण व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध भी है। अतएव वादिराजके उल्लेखोंमें सुस्पष्ट प्रमाणोंके विपरीत 'देव' से और 'योगीन्द्र' से समन्तभद्रका अभिप्राय ग्रहण करना निष्पक्ष आलोचनात्मक दृष्टि से अप्रामाणिक ठहरता है।

अन्तिम बात यह थी कि रत्नकरण्डके उपान्त्य श्लोकमें 'वीतकलंक' 'विद्या' और 'सर्वार्थ-सिद्धि' पद आये हैं जिनका अभिप्राय 'अकलंक' 'विद्यानन्द' और देवनन्दि पूज्यपादकृत 'सर्वार्थसिद्धि' से भी हो सकता है। श्लेष-काव्यमें दूसरे अर्थकी अभिव्यक्ति पर्यायवाची शब्दों व नामैकदेशद्वारा की जाना साधारण बात है। उसकी स्वीकारताके लिये इतना पर्याप्त है कि एक तो शब्दमें उस अर्थके देनेका सामर्थ्य हो और उस अर्थसे किसी अन्यतः सिद्ध बातका विरोध न हो। इसीलिये मैंने इस प्रमाणको सबके अन्तमें रखा है कि जब उपर्युक्त प्रमाणोंसे रत्नकरण्ड आप्तमीमांसाके कर्ताकी कृति सिद्ध नहीं होता तब उक्त श्लोकमें श्लेषद्वारा उक्त आचार्यों व ग्रन्थके संकेतको ग्रहण करनेमें कोई आपत्ति नहीं रहती। यदि उक्त श्लोकमें कोई श्लेषार्थ ग्रहण न किया जाय तो उसकी रचना बहुत अटपटी माननी पड़ेगी, क्योंकि उसकी शब्द-योजना सीधे वाच्य-वाचक सम्बन्धकी बोधक नहीं है। उदाहरणार्थ केवल 'सम्यक्' के लिये 'वीतकलंक' शब्द का प्रयोग अप्रसिद्ध या अप्रयुक्त जैसा दोष उत्पन्न करता है, क्योंकि वह शब्द उस अर्थमें रूढ़ या सुप्रयुक्त नहीं है। ऐसी शब्दयोजना तभी क्षम्य मानी जा सकती है जबकि उसके द्वारा रचयिताको कुछ और अर्थ व्यंजित करना अभीष्ट हो। श्लेष रचनामें 'वीतकलंक' से अकलंकका अभिप्राय ग्रहण करना तनिक भी आपत्तिजनक नहीं, तथा 'विद्या' से विद्यानन्द व सर्वार्थ-सिद्धिसे तन्नामक ग्रन्थकी सूचना स्वीकार करनेमें उक्त प्रमाणोंके प्रकाशानुसार कोई कठिनाई दिखाई नहीं देती।

इस प्रकार रत्नकरण्डश्रावकाचार और आप्तमीमांसाके कर्तृत्वके विरुद्ध पूर्वोक्त चारों आपत्तियां ज्योंकी त्यों आज भी खड़ी हैं, और जो कुछ ऊहापोह अबतक हुई है उससे वे और भी प्रबल व अकाट्य सिद्ध होती हैं।

उपर्युक्त प्रथम आपत्तिके परिहारका एक विशेष प्रयत्न पण्डित जुगलकिशोरजी मुख्तारद्वारा किया गया था। उन्होंने रत्नकरण्डश्रावकाचारके क्षुत्पिपासादि

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

पद्यके सन्बन्धमें जैन पण्डितोंका मत जानना चाहा था कि क्या वे उस पद्यको ग्रन्थका मौलिक अंश समझते हैं या प्रक्षिप्त। इस सम्बन्धमें उन्होंने जो पत्र घुमाया था उसे मैंने अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं देखा और न फिर इस बातका ही पता चला कि उन्हें पण्डितोंका क्या मत मिला और उसपर उन्होंने क्या निर्णय किया। किन्तु उनका वह पत्र प्रकृत विषयसे इतना सम्बद्ध है कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। वह सर्वथा साहित्य-विषयक है और उसमें कोई वैयक्तिक गोपनीय बात भी नहीं है। अतएव यदि मैं आज उनके उस पत्रको यहां उपस्थित करूं तो आशा है उसमें कोई अनौचित्य न होगा और मान्य मुख्तार जी मुझपर क्रुद्ध न होंगे। उनका वह पत्र इस प्रकार था—

"प्रिय महानुभाव, सस्नेह जयजिनेन्द्र। आज मैं आपके सामने रत्नकरण्डश्रावकाचारके एक पद्यके सम्बन्धमें अपना कुछ विचार रखना चाहता हूं। आशा है आप उसपर गम्भीरता तथा व्यापक दृष्टिसे विचार करके मुझे शीघ्र ही उत्तर देने की कृपा करेंगे।

वह पद्य 'क्षुत्पिपासा' नामका छठा पद्य है जिसमें आप्तका पुनः लक्षण कहा गया है, और जो लक्षण पूर्व लक्षणसे भिन्न ही नहीं, किन्तु कुछ विरुद्ध भी पड़ता है, और अनावश्यक जान पड़ता है—खासकर ऐसी हालतमें जब कि पूर्व लक्षणको देते हुये यहां तक कह दिया है कि 'नान्यथा ह्याप्तता भवेत्' और साथमें 'नियोगेन' पदका प्रयोग करके उसे और भी दृढ़ किया गया है। यदि उसमें मात्र दोषोंका नामोल्लेख होता और 'यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते' न कहा जाता, तो पूर्व पद्यके साथ उसका सम्बन्ध जुड़ सकता था, जैसा कि नियमसारमें आप्तका स्वरूप देनेके बाद दोषोंके नामोल्लेख वाली एक गाथा है। दोषोंके नाम उक्त पद्यमें पूरे आये भी नहीं, और इसलिये उन्हें पूरा करनेके लिये चौथे चरणका उपयोग किया जा सकता था। परन्तु वैसा न करके "यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते" कहना स्वामी समन्तभद्र जैसों की लेखनीसे उसके वहां प्रसूत होनेमें सन्देह पैदा करता है। जब स्वामीजी पूर्व पदमें आप्त-लक्षणके लिए, उत्सन्नदोष, सर्वज्ञ और आगमेशी ये तीन विशेषण निर्धारित कर चुके और स्पष्ट बतला चुके कि इनके विना आप्तता होती ही नहीं, तब वे अगले ही पद्यमें आप्तका दूसरा ऐसा लक्षण कैसे प्रस्तुत कर सकते हैं जिसमें उक्त तीनों विशेषण न पाये जाते हों। अगले पद्यमें आप्तका जो लक्षण दिया है, उसमें सर्वज्ञ और आगमेशी ये दो विशेषण देखनेमें नहीं आते, और इसलिये 'सः' के बाद 'अपि' शब्दको अध्याहृत मानकर यदि यह कहा भी जाता कि 'जिसके ये क्षुधादिक नहीं, वह भी आप्त कहा जाता है, तो उसमें पूर्व पद्यका 'नान्यथा ह्याप्तता भवेत्' यह वाक्य बाधक पड़ता है। यदि यह प्रबल नियामक वाक्य न होता तो वैसी कल्पना की जा सकती थी। और यदि स्वामी समन्तभद्रको उत्सन्न-दोष आप्तका स्वरूप वहां कहना अभीष्ट होता तो वे आप्त मात्रके लक्षण कथन—जैसी सूचना न करके वैसे आप्तकी लक्षण निर्देशकी स्पष्ट सूचना करते, अर्थात्—'यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते' के स्थानपर 'यस्याप्तः स प्रदोषमुक्' जैसे किसी वाक्यका प्रयोग करते। परन्तु ऐसा नहीं है। टीकाकार प्रभाचन्द्र भी इसमें कुछ सहायक नहीं होते। वे उक्त छठे पद्यको देते हुए प्रस्तावना वाक्य तो यह देते हैं—'अथ के पुनस्ते दोषा ये तत्रोत्सन्ना इत्याशङ्कयाह'। परन्तु टीका करते हुए लिखते हैं—"एतेऽष्टादश दोषा यस्य न सन्ति स आप्तः प्रकीर्त्यते प्रतिपाद्यते।" इससे यह दोषोंका निर्देशमात्र अथवा उत्सन्नदोष आप्तका लक्षण न रहकर आप्त मात्रका ही दूसरा लक्षण हो जाता है जिसके लिये उन्होंने 'अपि' शब्दका भी उद्भावन नहीं किया और दूसरी बहस छेड़ दी। साथ ही वैसी स्थितिमें तब समन्तभद्र आगे 'सर्वज्ञ आप्त' और 'आगमेशी आप्त'का भी लक्षण प्रतिपादन करते, जो नहीं पाया जाता।

इससे उक्त छठे पद्यकी स्थिति बहुत सन्दिग्ध जान पड़ती है। और वह सन्देह और भी पुष्ट होता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब हम देखते हैं कि ग्रन्थभरमें अन्यत्र कहीं भी एक के दो लक्षण नहीं कहे गये हैं। आगम, तपोभृत, त्रिमूढों और अष्टअङ्गों और स्मयादि सबके लक्षण एक एक पद्यमें ही दे दिये गये हैं। हो सकता है कि किसीने उत्सन्नदोषकी टिप्पणीके तौर पर इस पद्यको लिख रक्खा हो, और वह प्रभाचन्द्रसे पहले ही मूल प्रतियोंमें प्रविष्ट हो गया हो। यदि ऐसा सम्भव नहीं है, और आपकी रायमें यह मूलरूपमें समन्तभद्रकी कृति है, तो कृपया इसकी स्थिति जो सन्देह उत्पन्न कर रही है, उसे स्पष्ट कीजिये और सन्देहका निरसन कीजिये। इसलिये मैं आपका आभारी हूंगा। और यदि आप भी मेरी ही तरह अब इसकी स्थितिको संदिग्ध समझते हैं और आपको भी इसे मूलग्रन्थका वाक्य कहनेमें संकोच होता है तो वैसा स्पष्ट लिखिये। उत्तर जितना भी शीघ्र बन सके देनेकी कृपा करें। शीघ्र निर्णयके लिये उसकी बड़ी जरूरत है।"

—भवदीय जुगलकिशोर

श्री मुख्तारजीने यहां उक्त पद्यके सम्बन्धमें एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्नको उठाया था जिसका उक्त ग्रन्थ-कर्तृत्वके विषयसे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। किन्तु इसपर विद्वानोंके क्या मत आये, उनपर से मुख्तार साहबका क्या निर्णय हुआ, और वह अभी तक क्यों प्रकट नहीं किया गया, यह जिज्ञासा इस विषयके रुचियोंको स्वभावतः उत्पन्न होती है। मेरे पास तो उक्त विषयसे कुछ स्पर्श रखता हुआ मुख्तार साहबका एक प्रश्न उक्त पत्र लिखे जानेके कोई एक वर्ष पश्चात् यह आया था कि—'रत्नकरण्डश्रावकाचारकी प्रस्तावनामें पृष्ठ ३२ से ४१ तक मैंने जिन सात पद्यों-को संदिग्ध करार दिया है उनके सम्बन्धमें आपकी क्या राय है? क्या मेरे हेतुओंको ध्यानमें रखते हुए आप भी उन्हें संदिग्ध करार देते हैं, अथवा आपकी दृष्टिमें वे संदिग्ध न होकर मूल ग्रन्थके ही अङ्ग हैं? यह बात मैं आपसे जानना चाहता हूं। यदि आप मेरे विचारोंसे सहमत न हों तो कृपया उन आधारों तथा युक्तिप्रमाणोंसे अवगत कीजिये जिनसे वे मूल ग्रन्थके अङ्ग सिद्ध हो सकें। इस कृपा और कष्टके लिये मैं आपका बहुत आभारी हूंगा। आशा है आप मेरी प्रस्तावनाके उक्त पृष्ठोंको देखकर मुझे शीघ्र ही उत्तर देने की कृपा करेंगे।'

इसका मैंने तत्काल ही उन्हें यह उत्तर लिख भेजा था—"रत्नकरण्डश्रावकाचारकी प्रस्तावनामें आपने जिन पद्योंको संदिग्ध बतलाया है उनका ध्यान मुझे था ही। आपके आदेशानुसार मैंने वह पूरा प्रकरण फिरसे देख लिया है। मैं आपसे इस बातपर पूर्णतः सहमत हूं कि उन पद्योंकी रचना बहुत शिथिल प्रयत्नसे हुई है, अतएव आप्तमीमांसादि ग्रन्थोंके कर्ता द्वारा उनके रचे जानेकी बात बिलकुल नहीं जंचती। किन्तु रत्नकरण्डश्रावकाचारमें वे मूल लेखककी न होकर प्रक्षिप्त हैं इसके कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं, विशेषतः जब कि प्राचीनतम टीकाकारने उन्हें स्वीकार किया है, और कोई प्राचीन प्रतियां ऐसी नहीं पाई जातीं जिनमें वे पद्य सम्मिलित न हों। केवल रत्नकरण्डश्रावका-चारको दृष्टिमें रखते हुये वे पद्य इतने नहीं खटकते जितने आप्तमीमांसा आदि ग्रन्थोंके कर्तृत्वको ध्यानमें रखते हुए खटकते हैं; क्योंकि रत्नकरण्डकी रचनामें वह तार्किकता दृष्टिगोचर नहीं होती। अतएव इस विचार-विमर्शका परिणाम भी वही निकलता है कि रत्नकरण्डश्रावकाचार आप्तमीमांसाके कर्ताकी कृति नहीं है।"

इस प्रश्नोत्तरको भी कोई डेढ दो वर्ष हो गये किन्तु अभी तक तत्सम्बन्धी कोई मुख्तारजीका निर्णय मुझे देखनेको सुनने नहीं मिला। तो भी इन सब पत्रोंको यहां प्रस्तुत करना वर्तमान विषयके निर्णयार्थ अत्य-न्त आवश्यक था। ताकि यह दिशा भी पाठकोंकी दृष्टिसे ओझल न रहे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन कालोनी और मेरा विचार-पत्र

आजकल जैन-जीवनका दिनपर दिन ह्रास होता जा रहा है, जैनत्व प्राय: देखनेको नहीं मिलता—कहीं कहीं और कभी कभी किसी अंधेरे कोनेमें जुगनूके प्रकाशकी तरह उसकी कुछ झलक सी दीख पड़ती है। जैनजीवन और अजैनजीवनमें कोई स्पष्ट अन्तर नजर नहीं आता। जिन राग-द्वेष, काम-क्रोध, छल-कपट झूठ-फरेब, धोखा-जालसाजी, चोरी-सीनाजोरी, अतितृष्णा, विलासता, नुमाइशीभाव और विषय तथा परिग्रहलोलुपता आदि दोषोंसे अजैन पीडित हैं उन्हीं से जैन भी सताये जा रहे हैं। धर्मके नामपर किये जानेवाले क्रियाकाण्डोंमें कोई प्राण मालूम नहीं होता अधिकांशमें जाब्तापूरी, लोकदिखावा अथवा दम्भका ही सर्वत्र साम्राज्य जान पड़ता है। मूलमें विवेकके न रहनेसे धर्मकी सारी इमारत डांवाडोल हो रही है। जब धार्मिक ही न रहें तब धर्म किसके आधारपर रह सकता है? स्वामी समन्तभद्रने कहा भी है कि—'न धर्मो धार्मिकैर्विना'। अत: धर्मकी स्थिरता और उसके लोकहित-जैसे शुभ परिणामोंके लिये सच्चे धार्मिकोंकी उत्पत्ति और स्थितिकी ओर सविशेषरूपसे ध्यान दिया ही जाना चाहिये, इसमें किसीको भी विवादके लिये स्थान नहीं है। परन्तु आज दशा उलटी है—इस ओर प्राय: किसीकाभी ध्यान नहीं है। प्रत्युत इसके देशमें जैसी कुछ घटनाएं घट रही हैं और उसका वातावरण जैसा कुछ क्षुब्ध और दूषित हो रहा है उससे धर्मके प्रति लोगोंकी अश्रद्धा बढ़ती जा रही है, कितने ही धार्मिक संस्कारोंसे शून्य जन-मानस उसकी बगावतपर तुले हुए हैं और बहुतोंकी स्वार्थपूर्ण भावनाएं एवं अविवेकपूर्ण स्वच्छन्द-प्रवृत्तियां उसे तहस-नहस करनेके लिये उतारू हैं; और इस तरह वे अपने तथा उसे देशके पतन एवं विनाश का मार्ग आप ही साफ़ कर रहे हैं। यह सब देखकर भविष्यकी भयङ्करताका विचार करते हुए शरीरपर रोंगटे खड़े होते हैं और समझमें नहीं आता कि तब धर्म और धर्मायतनोंका क्या बनेगा। और उनके अभावमें मानव-जीवन कहां तक मानवजीवन रह सकेगा !!

दूषित शिक्षा-प्रणालीके शिकार बने हुए संस्कार-विहीन जैनयुवकोंकी प्रवृत्तियां भी आपत्तिके योग्य हो चली हैं, वे भी प्रवाहमें बहने लगे हैं, धर्म और धर्मायतनोंपरसे उनकी श्रद्धा उठती जाती है, वे अपने लिये उनकी जरूरत ही नहीं समझते, आदर्शकी थोथी बातों और थोथे क्रियाकाण्डोंसे वे ऊब चुके हैं, उनके सामने देशकालानुसार जैन-जीवनका कोई जीवित आदर्श नहीं है, और इसलिये वे इधर उधर भटकते हुए जिधर भी कुछ आकर्षण पाते हैं उधरके ही हो रहते हैं। जैनधर्म और समाजके भविष्यकी दृष्टिसे ऐसे नवयुवकोंका स्थितिकरण बहुत ही आवश्यक है और वह तभी हो सकता है जब उनके सामने हरसमय जैन-जीवनका जीवित उदाहरण रहे।

इसके लिये एक ऐसी जैनकालोनी—जैनबस्तीके बसानेकी बड़ी जरूरत है जहां जैन जीवनके जीते जागते उदाहरण मौजूद हों—चाहे वे गृहस्थ अथवा साधु किसी भी वर्गके प्राणियोंके क्यों न हों; जहां पर सर्वत्र मूर्तिमान जैनजीवन नजर आए और उससे देखनेवालोंको जैनजीवनकी सजीव प्रेरणा मिले; जहांका वातावरण शुद्ध-शांत-प्रसन्न और जैनजीवनके अनुकूल अथवा उसमें सब प्रकारके सहायक हो; जहां प्राय: ऐसे ही सज्जनोंका अधिवास हो जो अपने जीवनको जैनजीवनके रूपमें ढालनेके लिये उत्सुक हों; जहां पर अधिवासियोंकी प्राय: सभी जरूरतोंको पूरा करनेका समुचित प्रबन्ध हो और जीवनको ऊंचा उठानेके यथासाध्य सभी साधन जुटाये गये हों; जहां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के अधिवासी अपनेको एक ही कुटुम्बका व्यक्ति समझें एक ही पिताकी सन्तानके रूपमें अनुभव करें, और एक दूसरेके दुख-सुखमें बराबर साथी रहकर पूर्णरूप से सेवाभावको अपनाएँ तथा किसीको भी उसके कष्टमें यह महसूस न होने देवें कि वह वहांपर अकेला है।

समय-समयपर बहुतसे सज्जनोंके हृदयमें धार्मिक जीवनको अपनानेकी तरंगें उठा करती हैं और कितने ही सद्गृहस्थ अपनी गृहस्थीके कर्तव्योंको बहुत कुछ पूरा करलेनेके बाद यह चाहा करते हैं कि उनका शेष जीवन रिटायर्डरूपमें किसी ऐसे स्थानपर और ऐसे सत्सङ्गमें व्यतीत हो जिससे ठीक ठीक धर्मसाधन और लोक-सेवा दोनों ही कार्य बन सकें। परन्तु जब वे समाजमें उसका कोई समुचित साधन नहीं पाते और आस पासका वातावरण उनके विचारोंके अनुकूल नहीं होता तब वे यों ही अपना मन मसोसकर रह जाते हैं समर्थ होते हुए भी बाह्य परिस्थितियोंके वश कुछ भी कर नहीं पाते, और इस तरह उनका शेष जीवन इधर उधरके धन्धोंमें फंसे रहकर व्यर्थ ही चला जाता है। और यह ठीक ही है, बीजमें अंकुरित होने और अच्छा फलदार वृक्ष बननेकी शक्तिके होते हुए भी उसे यदि समयपर मिट्टी पानी और हवा आदिका समुचित निमित्त नहीं मिलता तो उसमें अंकुर नहीं फूटता और वह यों ही जीर्ण-शीर्ण होकर नकारा हो जाता है। ऐसी हालतमें समाजकी शक्तियोंको सफल बनाने अथवा उनसे यथेष्ट काम लेनेके लिये संयोगोंको मिलाने और निमित्तोंको जोड़नेकी बड़ी जरूरत रहती है। इस दृष्टिसे भी जैनकालोनीकी स्थापना समाजके लिये बहुत लाभदायक है और वह बहुतोंको सन्मार्ग-पर लगाने अथवा उनकी जीवनधाराको समुचितरूपसे बदलनेमें सहायक हो सकती है।

आज दो वर्ष हुए जब बाबू छोटेलालजी जैन रईस कलकत्ता मद्रास-प्रान्तस्थ आरोग्यवरम्के सेनिटोरि-यममें अपनी चिकित्सा करा रहे थे। उस समय वहांके वातावरण और ईसाई सज्जनोंके प्रेमालाप एवं सेवाकार्योंसे वे बहुत ही प्रभावित हुए थे। साथ ही यह मालूम करके कि ईसाईलोग ऐसी सेवा संस्थाओं तथा आकर्षक रूपमें प्रचुर साहित्यके वितरण-द्वारा जहां अपने धर्मका प्रचार कर रहे हैं वहां मांसाहारको भी काफी प्रोत्तेजन दे रहे हैं, जिससे आश्चर्य नहीं जो निकट भविष्यमें सारा विश्व मांसाहारी हो जाय; और इस लिये उनके हृदयमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि यदि जैनी समयपर सावधान न हुए तो असंभव नहीं कि भगवान महावीरकी निरामिष-भोजनादि-सम्बन्धी सुन्दर देशनाओंपर पानी फिर जाय और वह एकमात्र पोथी पत्रोंकी ही बात रह जाय। इसी चिन्ताने जैनकालोनीके विचारको उनके मानसमें जन्म दिया और जिसे उन्होंने जनवरी सन १९४५ के पत्रमें मुझपर प्रकट किया। उस पत्रके उत्तरमें २७ जनवरी माघसुदी १४ शनिवार सन १९४५को जो पत्र देहलीसे उन्हें मैंने लिखा था वह अनेक दृष्टियोंसे अनेकान्त-पाठकोंके जानने योग्य है। बहुत सम्भव है कि बाबू छोटेलालजीको लक्ष्यकरके लिखा गया यह पत्र दूसरे हृदयोंको भी अपील करे और उनमेंसे कोई माईका लाल ऐसा निकल आवे जो एक उत्तम जैन कालोनीकी योजना एवं व्यवस्थाके लिये अपना सब कुछ अर्पण कर देवे, और इस तरह वीरशासनकी जड़ोंको युगयुगान्तरके लिये स्थिर करता हुआ अपना एक अमर स्मारक कायम कर जाय। इसी सदुद्देश्यको लेकर आज उक्त पत्र नीचे प्रकाशित किया जाता है। यह पत्र एक बड़े पत्रका मध्यमांश है, जो मौनके दिन लिखा गया था, उस समय जो विचार धारा-प्रवाहरूपसे आते गये उन्हींको इस पत्रमें अङ्कित किया गया है और उन्हें अङ्कित करते समय ऐसा मालूम होता था मानों कोई दिव्य-शक्ति मुझसे वह सब कुछ लिखा रही है। मैं समझता हूं इसमें जैन धर्म, समाज और लोकका भारी हित सन्निहित है।

जैनकालोनी-विषयक पत्र—

"जैन कालोनी आदि सम्बन्धी जो विचार आपने प्रस्तुत किये हैं और बाबू अजितप्रसादजी भी जिनके लिये प्रेरणा कर रहे हैं वे सब ठीक हैं। जैनियोंमें सेवाभावकी स्पिरिटको प्रोत्तेजन देने और एकवर्ग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सच्चे जैनियों अथवा वीरके सच्चे अनुयायियोंको तैयार करनेके लिए ऐसा होना ही चाहिए। परन्तु ये काम साधारण बातें बनानेसे नहीं हो सकते, इनके लिये अपनेको होम देना होगा, दृढसङ्कल्पके साथ कदम उठाना होगा, 'कार्यं साधयिष्यामि शरीरं पातयिष्यामि वा' की नीतिको अपनाना होगा, किसी के कहने-सुनने अथवा मानापमानकी कोई पर्वाह नहीं करनी होगी और अपना दुख-सुख आदि सब कुछ भूल जाना होगा। एक ही ध्येय और एक ही लक्ष्यको लेकर बराबर आगे बढ़ना होगा। तभी रूढ़ियोंका गढ़ टूटेगा, धर्मके आसनपर जो रूढ़ियां आसीन हैं उन्हें आसन छोड़ना पड़ेगा और हृदयों पर अन्यथा संस्कारोंका जो खोल चढ़ा हुआ है वह सब चूरचूर होगा। और तभी समाजको वह दृष्टि प्राप्त होगी जिससे वह धर्मके वास्तविक-स्वरूपको देख सकेगी। अपने उपास्य देवताको ठीक रूपमें पहचान सकेगी, उसकी शिक्षाके मर्मको समझ सकेगी और उसके आदेशानुसार चलकर अपना विकास सिद्ध कर सकेगी। इस तरह समाजका रुख ही पलट जायेगा और वह सच्चे अर्थोंमें एक धार्मिक समाज और एक विकासोन्मुख आदर्शसमाज बन जायगा। और फिर उसके द्वारा कितनोंका उत्थान होगा, कितनोंका भला होगा, और कितनोंका कल्याण होगा, यह कल्पनाके बाहरकी बात है। इतना बड़ा काम कर जाना कुछ कम श्रेय, कम पुण्य अथवा कम धर्मकी बात नहीं है। यह तो समाजभरके जीवनको उठानेका एक महान आयोजन होगा। इसके लिये अपनेको बीजरूपमें प्रस्तुत कीजिये। मत सोचिये कि मैं एक छोटासा बीज हूं। बीज जब एक लक्ष्य होकर अपनेको मिट्टीमें मिला देता है, गला देता और खपा देता है, तभी चहुं ओरसे अनुकूलता उसका अभिनन्दन करती है और उससे वह लहलहाता पौधा तथा वृक्ष पैदा होता है जिसे देखकर दुनियां प्रसन्न होती है, लाभ उठाती है आशीर्वाद देती है; और फिर उससे स्वत: ही हजारों बीजोंकी नई सृष्टि हो जाती

हमें वाक्पटु न होकर कार्यपटु होना चाहिये, आदर्शवादी न बनकर आदर्शको अपनाना चाहिये और उत्साह तथा साहसकी वह अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिये जिसमें सारी निर्बलता और सारी कायरता भस्म हो जाय। आप युवा हैं, धनाढ्य हैं, धनसे अलिप्त हैं, प्रभावशाली हैं, गृहस्थके बन्धनसे मुक्त हैं और साथ ही शुद्धहृदय तथा विवेकी हैं, फिर आपके लिये दुष्करकार्य क्या होसकता है? थोड़ीसी स्वास्थ्य की खराबीसे निराश होने जैसी बातें करना आपको शोभा नहीं देता। आप फलकी आतुरताको पहलेसे ही हृदयमें स्थान न देकर दृढ़ सङ्कल्प और Full will power के साथ खड़े हो जाइये, सुखी आराम तलब जैसे—जीवनका त्याग कीजिये और कष्ट सहिष्णु बनिये, फिर आप देखेंगे अस्वस्थता अपने आप ही खिसक रही है और आप अपने शरीरमें नये तेज नये बल और नई स्फूर्तिका अनुभव कर रहे हैं। दूसरोंके उत्थान और दूसरोंके जीवनदानकी सच्ची सक्रिय भावनाएँ कभी निष्फल नहीं जातीं—उनका विद्युतका सा असर हुए बिना नहीं रहता। यह हमारी अश्रद्धा है अथवा आत्मविश्वासकी कमी है जो हम अन्यथा कल्पना किया करते हैं।

मेरे खयालमें तो जो विचार परिस्थितियोंको देख कर आपके हृदयमें उत्पन्न हुआ है वह बहुत ही शुभ है, श्रेयस्कार है और उसे शीघ्र ही कार्यमें परिणत करना चाहिये। जहां तकमैं समझता हूं जैन कालोनी के लिये राजगृह तथा उसके आस पासका स्थान बहुत उत्तम है। वह किसी समय एक बहुत बड़ा समृद्धिशाली स्थान रहा है, उसके प्रकृत्ति प्रदत्त चश्मे—गर्म जलके कुण्ड—अपूर्व हैं। स्वास्थ्यकर हैं, और जनताको अपनी ओर आकर्षित किये हुए हैं। उसके पहाड़ी दृश्य भी बड़े मनोहर हैं और अनेक प्राचीन स्मृतियों तथा पूर्व गौरवकी गाथाओंको अपनी गोदमें लिये हुए हैं। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यह स्थान बुरा नहीं है। स्वास्थ्य सुधारके लिये यहां लोग महीनों आकर ठहरते हैं। वर्षाऋतुमें मच्छर साधारणत: सभी स्थानोंपर होते हैं—यहां वे कोई विशेषरूपसे नहीं होते और जो होते हैं उसका भी कारण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सफाई का न होना है। अच्छी कालोनी बसने और सफाईका समुचित प्रबन्ध रहनेपर यह शिकायतभी सहज ही दूर होसकती है। मालूम हुआ यहां दरियागञ्जमें पहले मच्छरोंका बड़ा उपद्रव था गवर्नमैंटने ऊपरसे गैस वगैरह छुड़वाकर उसको शांत कर दिया और अब वह बड़ी रौनकपर है और वहां बड़े बड़े कोठी बंगले तथा मकानात और बाजार बन गए हैं। ऐसी हालतमें यदि जरूरत पड़ी तो राजगृहमें भी वैसे उपायोंसे काम लिया जा सकेगा; परन्तु मुझे तो जरूरत पड़ती हुई ही मालूम नहीं होती। साधारण सफाईके नियमोंका सख्तीके साथ पालन करने और करानेसे ही सब कुछ ठीक-ठाक हो जायगा।

अत: इसी पवित्र स्थानको फिरसे उज्जीवित *Relive* करनेका श्रेय लीजिये, इसीके पुनरुत्थानमें अपनी शक्तिको लगाइये और इसीको जैन कालोनी बनाइये। अन्यस्थानोंकी अपेक्षा यहां शीघ्र सफलताकी प्राप्ति होगी। यहां ज़मीनका मिलना सुलभ है और कालोनी बसानेकी सूचनाके निकलते ही आपके नक्शे आदिके अनुसार मकानात बनानेवाले भी आसानीसे मिल सकेंगे और उसके लिये आपको विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। कितने ही लोग अपना रिटायर्ड जीवन वहीं व्यतीत करेंगे और अपने लिये वहां मकानात स्थिर करेंगे। जिस संस्थाकी बुनियाद अभी कलकत्तेमें डाली गई वह भी वहां अच्छी तरहसे चल सकेगी। कलकत्ते जैसे बड़े शहरोंका मोह छोड़िये और इसे भी भुला दीजिये कि वहां अच्छे विद्वान् नहीं मिलेंगे। जब आप कालोनी जैसा आयोजन करेंगे तब वहां आवश्यकताके योग्य आदमियोंकी कमी नहीं रहेगी। यह हमारा काम करनेसे पहले का भयमात्र है। अतः ऐसे भयोंको हृदयमें स्थान न देकर और भगवान महावीरका नाम लेकर काम प्रारम्भ कर दीजिये। आपको जरूर सफलता मिलेगी और यह कार्य आपके जीवनका एक अमर कार्य होगा। मैं अपनी शक्तिके अनुसार हर तरहसे इस कार्यमें आपका हाथ बटानेके लिये तय्यार हूं। वृद्ध हो जानेपर भी आप मुझमें इसके लिये कम उत्साह नहीं पाएँगे। जैनजीवन और जैनसमाजके उत्थानके लिये मैं इसे उपयोगी समझता हूं।

लाला जुगलकिशोरजी (कागजी) आदि कुछ सज्जनोंसे जो इस विषयमें बातचीत हुई तो वे भी इस विचारको पसन्द करते हैं और राजगृहको ही इसके लिये सर्वोत्तम स्थान समझते हैं। इस सुन्दर स्थान को छोड़कर हमें दूसरे स्थानकी तलाशमें इधर उधर भटकनेकी जरूरत नहीं। यह अच्छा मध्यस्थान है—पटना, आरा आदि कितने ही बड़े बड़े नगर भी इसके आस पास हैं और पावापुर आदि कई तीर्थक्षेत्र भी निकटमें हैं। अत: इस विषयमें विशेष विचार करके अपना मत स्थिर कीजिये और फिर लिखिये। यदि राजगृहके लिये आपका मत स्थिर हो जाय तो पहले साहू शान्तिप्रसादजीको प्रेरणा करके उन्हें वह जमींदारी खरीदवाइये, जिसे वे खरीदकर तीर्थक्षेत्रको देना चाहते हैं, तब वह जमीदारी कालोनीके काममें आ सकेगी।

—जुगलकिशोर मुख्तार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्याय की उपयोगिता

एक पत्र और उसका उत्तर

वर्णीभवन सागरके विद्यार्थी धन्यकुमार जैनने एक जिज्ञासापूर्ण पत्र लिखा है, जिसमें उन्होंने 'न्याय पढ़नेसे क्या लाभ है ?' इस प्रश्न पर प्रकाश डालने की प्रेरणा की है। अत: उनके पूरे पत्र और अपने उत्तरको नीचे दिया जाता है।

"वर्तमानमें छात्रोंको न्यायसे अरुचि सी होती जा रही है। यद्यपि बहुतसे छात्र जैन विद्यालयोंमें शिक्षा प्राप्त करनेके कारण बाध्य होकर पढ़ते हैं। परन्तु बहुतसे छात्र केवल किसी प्रकार उत्तीर्ण होने का प्रयत्न करते हैं। मैं भी एक न्यायके छोटेसे ग्रन्थका पढ़नेवाला छात्र हूं। मुझे न्याय पढ़ते हुये डेढ़ वर्ष होचुका। परन्तु मैं अभीतक न्यायकी उपयोगिता नहीं समझ पाया। अत: कृपया मेरे "न्याय पढ़नेसे क्या लाभ है ?" इस प्रश्नपर प्रकाश डालें। ताकि मुझ ऐसे अल्पज्ञ छात्र न्याय पढ़नेसे लाभोंको समझकर उसे पढ़नेमें मन लगावें। जबतक किसी विषयकी उपयोगिता समझमें नहीं आती तबतक उसके विषयमें कुछ भी प्रयास करना व्यर्थ सा होता है।"

हमारा खयाल है कि वि० धन्यकुमारका यह पत्र अपने वर्गके विचारोंका प्रकाशक है, जो कुछ विचार न्यायके पढ़नेके बारेमें उनने प्रकट किये हैं वही प्राय: अन्य न्याय पढ़नेवाले जैन-छात्रोंके भी होंगे। मैं भी जब न्याय पढ़ता था तो मुझे भी प्रारम्भमें न्याय पढ़नेसे अरुचि रहा करती थी। क्षत्रचूड़ामणि और चन्द्रप्रभचरित के पढ़नेमें और उनके लगानेमें जितनी स्वाभाविक रुचि होती थी उतनी परीक्षामुख और न्यायदीपिकाके पढ़नेमें नहीं। जब न्यायदीपिकाकी पंक्तियोंको रटकर सुनाना पड़ता था तब उससे जी कतराता था। पर अब यह अरुचि नहीं है। बल्कि अनुभव करता हूं कि न्यायशास्त्रका अध्ययन योग्य विद्वत्ता प्राप्त करनेके लिये बहुत आवश्यक है उसके बिना बुद्धि प्राय: तर्कशील और पैनी नहीं होती। अत: न्यायशास्त्रके अध्ययनसे बड़ा लाभ है। प्रत्येक योग्य छात्र उससे अधिक विद्वत्ता और साहित्य-सेवा का लाभ उठा सकता है और साहित्यिक, दार्शनिक तथा सामान्य विद्वत्संसार में अपनी ख्यातिके साथ साथ अपना अमर स्थान बना सकता है। प्रसिद्ध दार्शनिक और साहित्यिक विद्वान् राधाकृष्णन और राहुल सांकृत्यायन अपनी दार्शनिक विद्वत्ता और रचनाओंके कारण ही आज विश्वविख्यात हैं। अपनी समाजके पं० सुखलाल जी, पं० महेन्द्रकुमार जी आदि विद्वान् उक्त जगतमें ऐसे ही ख्याति-प्राप्त विद्वान् कहे जा सकते हैं। मतलब यह है कि न्याय-विद्या बुद्धिको तीक्ष्ण करने के लिये बड़ी उपयोगी और लाभदायक श्रेष्ठ विद्या है और इस लिये उसका अभ्यास नितांत आवश्यक है।

यद्यपि हम यह नहीं कहते कि शिक्षासंस्थाओंमें पढ़ने वाले हरेक छात्रको जबरन् न्याय पढ़नेके लिये मजबूर किया ही जाय। जिनकी रुचि हो, अथवा उचित आकर्षण ढंगसे न्याय पढ़नेकी उपयोगिता एवं लाभ बतला कर जिनकी रुचि बनाई जा सकती हो उन्हें ही न्याय पढ़ाना उचित है। यह मानी हुई बात है कि सभी छात्र नैयायिक, वैयाकरण, कवि, ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक, पुरातत्त्वविद् आदि नहीं बन सकते। उन्हें अपनी अपनी रुचिके अनुसार ही बनने देना चाहिये। बनारस विद्यालयमें एक छात्र थे। वे न्यायाध्यापक जीके पास पढ़ते वक्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तकको तो खोलके रख लेते थे, परन्तु उनकी दृष्टि बचाकर इधर कागज घोड़ा, बन्दर, हाथी, आदमी आदि के चित्र खींचते रहते थे। पीछे वे नैयायिक तो नहीं बन सके पर पेन्टर अच्छे बने।

यह जरूर है कि प्रारम्भमें छात्र इतने विचारक तो नहीं होते कि वे अपने पठनीय विषयका अच्छी तरह स्वयं निर्णय कर सकें और इसलिये उन्हें अपने गुरुजनोंका परामर्श लेना अथवा निश्चित कोर्षके अनुसार चलना आवश्यक होता है। यह एक प्रकार से अच्छा भी है; क्योंकि अनुभवी गुरुजनोंका परामर्श अथवा अनेक विद्वानोंकी रायसे तैयार किया गया कोर्ष उस समय उन अनुभवहीन छात्रोंके लिये पथ-प्रदर्शनका काम करता है। परन्तु गुरुजनोंको परामर्श देते समय उनकी रुचिका खयाल अवश्य रखना चाहिये और उन्हें पूरी तरह संतोषित करना चाहिये, केवल एक दो बार कह देनेसे पिण्ड नहीं छुड़ा लेना चाहिये और न "बाबावाक्यं प्रमाणम्" रूपसे आदेशका आश्रय लेना चाहिये। उन्हें उतने प्रकारोंसे पाठ्य-विषयके लाभालाभ (गुण-दोष) को बताना चाहिये जितनोंसे वह उनके गले उतर जाय या मन भरजाय।

जहां तक मैं जानता हूं आजका न्यायशास्त्रका शिक्षण भी सन्तोष-जनक और छात्ररुचि-वर्धक नहीं होता। प्रारम्भमें तो उसकी और भी बुरी दशा है। पंक्तियोंका मात्र अर्थ करके उन्हें वे पंक्तियां रटनेको कहा जाता है। न्याय विषय एक तो वैसे ही रूखा है और फिर उसका शिक्षण भी रूखा हो तो कोमल बुद्धि छात्रोंकी रुचि उसके अध्ययनमें कैसे हो सकती है? कोमल बुद्धि तो सहज-ग्राह्य चीजको बातचीत के ढङ्गमें ग्रहण करना चाहती है। विद्वानोंका मत है कि प्रत्येक व्यक्तिकी बुद्धिमें तर्क और उसको समझनेकी शक्ति रहती है और वह हर काममें उसका उपयोग करता है। एक मजदूरसे सवाल करिये कि तू मजदूरी किस लिये करता है? वह फौरन जवाब देगा कि अपना और अपने बच्चों, बीबी आदिका पेट भरने (भरण-पोषण करने) के लिये करता हूं। उससे पुन: पूछिये कि यदि तुम कामपर समयपर न पहुंचो या कभी न जाओ तो क्या हर्ज है? वह चट उत्तर देगा कि मालिक खफा होगा और मजदूरी में से पैसे काट लेगा। इसी तरह किसी छात्रसे प्रश्न करिये कि तुमने यदि अपना सबक याद न किया तो गुरुजी तुमसे क्या कहेंगे? वह उत्तर देगा कि वे हमसे नाराज होंगे और हमें दण्ड देंगे। फिर पूछिये कि यदि तुमने अपना पाठ याद करके उन्हें सुना दिया तो क्या होगा? वह तुरन्त जबाब देगा कि हम उनकी नाराजीसे बच जावेंगे — वे हम पर प्रसन्न रहेंगे और इसी तरह अपना पाठ याद करते रहने पर हम परीक्षा में पास हो जावेंगे। यही सब बातें हमारे परीक्षामुख (न्यायशास्त्र के पहिले ग्रन्थ) में— 'हिताहितप्राप्तिपरिहार—समर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्'— इस सूत्रमें बतलाई गई हैं। अन्य विद्वानोंका यह भी कहना है कि श्रद्धाके अन्तर्गतभी सूक्ष्मतर्क निहित रहता है।

कहनेका तात्पर्य यह है कि बालकों आदि सबका दिमाग कुछ न कुछ तर्कशील स्वभाव से ही होता है। अतएव प्रारम्भमें छात्रोंको न्यायशास्त्रका शिक्षण प्राय: बातचीतके ढंगमें अथवा प्रश्नोत्तरके रूपमें दिया जाना चाहिए साथ में जल्दी समझमें आनेवाले अनेक उदाहरण भी, जो आम तौर पर प्रसिद्ध हों, देना चाहिये। इससे छात्रोंको न्यायका पढ़ना अरुचिकर या भाररूप मालूम नहीं पड़ेगा— उसे वे रुचिके साथ पढ़ेंगे। न्यायशास्त्रका शिक्षण वस्तुत: साहित्य आदिके शिक्षणसे बिल्कुल जुदा है। उसके शिक्षकके लिये प्रतिदिनके पाठ्यविषय को पहले हृदयङ्गम (परिभावित) करना और फिर पढ़ाना बड़ा आवश्यक है। ऐन मौके पर (उसी पढ़ाते समय) ही उसकी तैयारी नहीं होना चाहिये। ग्रन्थो

भावको अपनी बोलचालकी भाषा और शब्दोंमें ही प्रकट करना चाहिये। इससे जहां छात्रोंको न्याय पढ़नेमें अरुचि नहीं होगी वहां शिक्षकको एक फायदा यह होगा कि वह स्वतन्त्र चिन्तक बनेगा — वह टीकादि ग्रन्थों में हुई भूलों के दुहराने एवं अनुसरण करने से बच जाता है। अन्यथा वह गतानुगतिक बना रहेगा। उदाहरण स्वरूप न्यायदीपिकामें असाधारण धर्मको लक्षण का लक्षण मानने वालों के लिये अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असम्भव यह तीन दोष दिये गये हैं। इसकी हिन्दी टीकामें टीकाकार पं० खूबचन्दजी से असम्भव दोष का खुलासा करनेमें एक भूल हो गई है। वहां कहा गया है—

'लक्ष्य और लक्षण ये दोनों एक ही अधिकरण में रहते हैं, ऐसा नियम है। यदि ऐसा न मानोगे तो घट का लक्षण पट भी मानना पड़ेगा परन्तु प्रवादी के माने हुए लक्षण के अनुसार लक्ष्य तथा लक्षण का रहना एक ही अधिकरण में नहीं बन सकता। क्योंकि उसके मतानुसार लक्षण लक्ष्य में रहता है और लक्ष्य अपने अवयवों में रहता है। जैसे पृथ्वी का लक्षण गन्ध है वह गन्ध पृथ्वी में रहता है और पृथ्वी अपने अवयवों में रहती है। इसी प्रकार सभी उदाहरणों में लक्ष्य तथा लक्षण में भिन्नाधिकरणता ही सिद्ध होती है। कहीं भी एकाधिकरणता नहीं बनती। इसलिये इस लक्षण के लक्षण में असम्भव दोष आता है।

न्यायदीपिकामें उक्त लक्षण के लक्षण में जो असम्भव दोष कहा गया है वह शाब्द सामानाधिकरण्य के अभाव को लेकर है, आर्थ सामानाधिकरण्य के अभाव को लेकर नहीं। इस सम्बन्ध में पं० वंशीधर जी व्याकरणाचार्य कई वर्ष पूर्व स्पष्ट कर चुके हैं[१]। परन्तु न्यायदीपिका के अनेक शिक्षक अभी भी उक्त भूल को दुहराते हैं। अतः न्यायशाला के शिक्षक को अपने दिमाग पर मुख्यतः जोर देना चाहिये। इतना प्रकृतोपयोगी प्रसङ्गानुसार कह कर अब मूल प्रश्न पर प्रकाश डाला जाता है—

१— हम पहिले कह आये हैं कि हरेक व्यक्तिकी बुद्धि स्वभावतः कुछ न कुछ तर्कशील रहती है। पर न्यायशास्त्रके अध्ययनसे उस तर्कमें विकास होता है, बुद्धि परिमार्जित होती है, प्रश्न करने और उसे जमा कर उपस्थित करनेका बुद्धिमें माद्दा आता है। बिना तर्ककी बुद्धि कभी कभी ऊट पटांग— जीको स्पर्श न करने वाले प्रश्न कर बैठती है, जिससे व्यक्ति हास्यका पात्र बनता है।

२— न्याय ग्रन्थोंका पढ़ना व्यवहार कुशलता के लिये भी उपयोगी है। उससे हमें यह मालूम होजाता है कि दुनियामें भिन्न भिन्न विचारोंके लोग हमेशासे रहे हैं और रहेंगे। यदि हमारे विचार ठीक और सत्य हैं और दूसरेके विचार ठीक एवं सत्य नहीं हैं तो दर्शनशास्त्र हमें दिशा दिखाता है कि हम सत्यके साथ सहिष्णु भी बनें और अपनेसे विरोधी विचार वालों को अपने तर्कों द्वारा ही सत्यकी ओर लानेका प्रयत्न करें, जोर जबरदस्ती से नहीं। जैन दर्शन सत्यके साथ सहिष्णु है इसीलिये वह और उसका सम्प्रदाय भारत में टिका चला आरहा है अन्यथा बौद्ध आदि दर्शनोंकी तरह उसका टिकना अशक्य था। अन्धश्रद्धाको हटाने, वस्तुस्थितिको समझने और विभिन्न विचारोंका समन्वय करनेके लिये न्याय एवं दार्शनिक ग्रन्थोंका पढ़ना, मनन करना, चिन्तन करना जरूरी है। न्याय ग्रन्थोंमें जो आलोचना पाई जाती है उसका उद्देश्य केवल इतना ही है

१ मैंने भी स्पष्ट किया है देखो न्यायदीपिका पृ० १० [प्रस्ता०], पृ० १४१ [हिन्दी टीका] तथा परि० नं० ७ पृ० २३८।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि सत्य का प्रकाशन और सत्य का ग्रहण हो। न्यायालयमें भी झूठे पक्षकी आलोचना की ही जाती है। न्यायशास्त्रका अध्येता प्राय: परीक्षा चक्षु कहा जाने योग्य होता है।

३– इसके अलावा कार्यकारणभावका ज्ञान भी न्यायशास्त्र से होता है। जाड़ोंमें रुई से भरा या ऊन से बना कपड़ा लोग क्यों पहिनते हैं? गरीब लोग आग जला जला कर क्यों तापते हैं? इसका उत्तर है कि उन चीजोंसे ठंड दूर होती है— वे उसके कारण हैं और ठंड दूर होना उनका कार्य है और कारणसे कार्य होता है आदि बातोंका ज्ञान तर्कशास्त्र से होता है। यह अलग बात है कि जो तर्कशास्त्र नहीं पढ़ा उसे भी उक्त प्रकारका ज्ञान होता है परन्तु यह अवश्य है कि उसका ज्ञान तो देखा देखी है और तर्कशास्त्र के अभ्यासीका ज्ञान अनुमान प्रमाणसे स्वयं का निर्णीत ज्ञान है वह उसकी व्यवस्थित मीमांसा जानता है।

४– न्यायशास्त्रका प्रभाव क्षेत्र व्यापक है, व्याकरण, साहित्य, राजनीति, इतिहास, सिद्धान्त आदि सब पर इसका प्रभाव है। कोई भी विषय ऐसा नहीं है जो न्याय के प्रभाव से अछूता हो। व्याकरण और साहित्य के उच्च ग्रन्थों में न्यायसूर्य का तेजस्वी और उज्ज्वल प्रकाश सर्वत्र फैला हुआ मिलेगा। मैं उन मित्रों को जानता हूं जो व्याकरण और साहित्य के अध्ययन के समय न्याय के अध्ययनकी अपनेमें कमी महसूस करते हैं और उसकी आवश्यकता पर जोर देते हैं। इससे स्पष्ट है कि न्यायका पढ़ना कितना उपयोगी और लाभदायक है।

५– किसीभी प्रकारकी विद्वत्ता प्राप्त करने और किसीभी प्रकारके साहित्यनिर्माण करनेके लिये चलता दिमाग़ चाहिये। यदि चलता दिमाग़ नहीं है तो वह न तो विद्वान बन सकता है और न किसी तरहके साहित्य का निर्माण ही कर सकता है। और यह प्रकट है कि चलता दिमाग़ मुख्यत: न्याय शास्त्रसे होता है उसे दिमाग़को तीक्ष्ण एवं द्रुत गति से चलता करनेके लिये उसका अवलम्बन जरूरी है। सोनेमें चमक कसौटी पर ही की जाती है। अत: साहित्यसेवी और विद्वान बननेके लिये न्याय का पढ़ना उतनाही जरूरी है जितना आज राजनीति और इतिहासका पढ़ना जरूरी है।

६– न्यायशास्त्रमें कुशल व्यक्ति सब दिशाओंमें जासकता है और सब क्षेत्रोंमें अपनी विशिष्ट उन्नति कर सकता है – वह असफल नहीं होसकता। सिर्फ शर्त यह कि वह न्याय ग्रन्थोंका केवल भार-वाही न हो। उसके रससे पूर्णत: अनुप्राणित हो।

७– निसर्गज तर्क कम लोगोंमें होता है। अधिकांश लोगोंमें तो अधिगमज तर्कही होता है जो साक्षात् अथवा परम्परया न्यायशास्त्र-तर्कशास्त्र के अभ्याससे प्राप्त होता है। अतएव जो निसर्गत: तर्कशील नहीं हैं उन्हें कभी भी हताश नहीं होना चाहिये और न्यायशास्त्रके अध्ययन द्वारा अधिगमज तर्क प्राप्त करना चाहिये। इससे वे न केवल अपनाही फायदा उठा सकते हैं किन्तु वे साहित्य और समाजके लिये भी अपूर्व देनकी सृष्टि कर सकते हैं।

८– समन्तभद्र, अकलंक, विद्यानन्द आदि जो बड़े बड़े दिग्गज प्रभावशाली विद्वानाचार्य हुये हैं वे सब न्यायशास्त्रके अभ्यास से ही बने हैं। उन्होंने न्यायशास्त्र रत्नाकरका अच्छी तरह अवगाहन करके ही उत्तम उत्तम ग्रन्थ रत्न हमें प्रदान किये। जिनका प्रकाश आज जग जाहिर है और जो हमें धरोहरके रूपमें सौभाग्यसे प्राप्त हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम उन रत्नोंकी आभाको अधिकाधिक रूपमें दुनियांके कोने कोने में फैलायें जिससे जैन शासनकी महत्ता और जैन दर्शनका प्रभाव लोकमें ख्यात हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ये कुछ चंद बातें हैं जिनसे न्यायके पढ़नेकी उपयोगिता और लाभोंपर कुछ प्रकाश पड़ सकता है। अतः ज्ञात होता है कि न्याय एक बहुत उपयोगी और लाभदायक विषय है जिसका अध्ययन लौकिक और पारमार्थिक दोनों दृष्टियोंसे आवश्यक है—उसकी अपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

—दरबारीलाल कोठिया

—: जैनसाहित्य महारथी :—

स्व० मोहनलाल दलीचन्द देसाई

(ले०—श्री भंवरलाल नाहटा)

शत्रुञ्जय, गिरनार आदि तीर्थोंसे पवित्रित सौराष्ट्र-काठियावाड़ देशने कई महान् व्यक्तियोंको जन्म दिया जिनमें से वर्तमान युगके तीन जैन तेजस्वी नक्षत्रों - जो आज विद्यमान नहीं हैं—का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अध्यात्म साधनाके श्रेष्ठतम साधक श्रीमद् राजचन्द्र, जैन साहित्य महारथी मोहनलाल दलीचन्द देसाई एवं लोक-साहित्यके महान् लेखक झवेरचन्द मेघाणी ये तीनों इसी पवित्रभूमिके रत्न थे। इनमें जैनसाहित्यकी सेवा करनेमें श्रीयुत मोहनलाल दलीचन्द देसाईने सतत प्रयत्न कर जो ठोसकृतियां जैन समाजको दीं इसके लिये जैनसमाज आपका सर्वदा ऋणी रहेगा। हिन्दी पाठकोंकी जानकारीके लिये श्रीयुत देसाईकी सेवाओंका संक्षिप्त परिचय यहां दिया जारहा है।

बीकानेर (काठियावाड़) रियासतके लूणसर गांवमें सन् १८८५ ई० के अप्रेल मासमें इनका जन्म हुआ था। ये दशा श्रीमाली जातिके श्वेताम्बर मूर्त्तिपूजक जैन श्रीदलीचन्द देसाईके पुत्र थे। उनकी माताका नाम उजानबाई था। इनके जीवननिर्माणमें राजकोटनिवासी श्रीयुत प्राणजीवन मुरारजी साहका विशेष हाथ रहा है, जो इनके मामा होते थे। पिताकी स्थिति अत्यन्त साधारण होनेके कारण ५ वर्षकी बाल्यावस्थामें ही प्राणजीवन मामा इन्हें अपने यहां ले आये। पढ़ाईका समुचित प्रबन्ध करदिया, जिससे मामाके पास रहकर इन्होंने प्रीवियस पासकी। तदन्तर गोकुलदास तेजपाल बोर्डिंगमें रहकर सन् १९०६ में बी० ए० की परीक्षा पास की।

बी० ए० पासकर इन्होंने माधवजी कामदार एण्ड छोटूभाई सोलीसिटर्सके यहां रु० ३०) मासिकमें नौकरी करली। वहां नौकरी करते हुए इन्होंने एल० एल० बी० का अभ्यास चालू रखा और साढ़े तीन वर्षमें अर्थात् १९१० की जुलाईमें एल० एल० बी० होगये। इसके बाद सेप्टेम्बर महीनेमें इन्होंने वकालतकी सनद प्राप्त की उस समय आपको फीसके लिये सेठ हेमचन्द अमरचन्दसे कर्जके तौरपर रुपये लेने पड़े थे जो पीछे सुविधानुसार लौटा दिये गये थे।

श्रीयुत देसाई वकील होकर अपना स्वतंत्र व्यापार करनेलगे और सन् १९११ में पहिला विवाह अभयचन्द कालीदासकी पुत्री मणि बहनसे हुआ जिससे लाभलक्ष्मी और नटवरलाल नामक दो सन्तानें हुई। मणिबहनका देहान्त होजाने पर सन् १९२० के दिसम्बरमें प्रभावती बहिनके साथ आपका द्वितीय विवाह हुआ। जिससे रमणीकलाल और जयसुखलाल नामके पुत्र और ताराबहिन व रमाबहिन नामकी पुत्रियां उत्पन्न हुई।

अपने व अपने परिवारके आजीविकार्थ व्यापार—वकालत या कोईभी धन्धा प्रत्येक व्यक्ति करता है परन्तु आदर्श व्यक्ति वही कहा जासकता है जो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाज और साहित्यसेवा में अधिकसे अधिक समय का भोग देता है। स्वर्गीय देसाई सच्चे लगनशील और निरन्तर ठोस कार्यकर्त्ता थे। हाईकोर्टकी छुट्टियोंमें तो आप अधिकतर प्रवासमें जाकर जैनहस्तलिखित प्रतियोंका अवलोकनकर विवरण लिखतेही पर अन्य समय भी दिनरात उनका कार्य चालू रहता था। आफिसमें भी अपने पोथीपत्रे साथ रखते और जब फुरसत मिली सरस्वती उपासनामें जुट जाते। घर पर भी जब सब लोग सोये रहते, देसाई महोदय रातमें दो दो बजे तक अपनी साहित्य-साधनामें संलग्न रहते थे। आलस्य-प्रमादको पासभी नहीं फटकने देते थे, जहां कहींभी साहित्यिक कार्य होता स्वयं तत्काल जा पहुंचते थे। आपने अपनी साहित्य-साधनाकी सबसे अधिक सेवा श्रीजैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्सको दी। जैनश्वे० कौ० हेरल्डके ७ वर्ष तक आप संपादक रहे। "जैनयुग" मासिक का ५ वर्ष तक सम्पादन किया, जो अन्वेषण और साहित्यिक जैनपत्रोंमें अपना खास स्थान रखता था। जैनसाहित्यसंशोधकके बाद उच्चकोटिके पत्रोंमें जैनयुगका ही नम्बर लिया जासकता था, यदि वह बन्द न होता तो अबतक न जाने कितना महत्त्वपूर्ण जैनसाहित्य प्रकाशमें आजाता।

देसाई महोदयको जैनसाहित्यके प्रति प्रगाढ़ प्रेम और अनन्यभक्ति थी। गुजराती भाषाके लिये आप ने बहुत कुछ किया एवं जैन भाषासाहित्यके प्राचीन ग्रन्थोंको गुर्जरभाषा-भाषी जनतामें प्रकाशमें लानेके हेतु आपने हजारों पृष्ठोंमें "जैनगुर्जरकवियो" के तीन भाग प्रकाशित कर सैकड़ों जैन कवियोंको उच्चासन प्राप्त कराया एवं हजारों कृतियोंको विद्वत् समाजके सन्मुख रखकर गुर्जर-गिरा, जैनसाहित्य और जैनशासनकी अमूल्य सेवा की। जैनगुर्जर कवियोंका प्रथमभाग सं० १९१२ में प्रकाशित हुआ, जिसमें १३वीं शताब्दीसे १७वीं शताब्दीके अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी भाषाके दि० श्वे० जैनेतर कवि और उनकी रचनाओंका आदि अन्त-सह महत्त्वपूर्ण परिचय दिया है। इस भागमें कुल २८७ जैनकवि और ५४१ पद्यकृतियोंका परिचय है, तदनन्तर गद्यग्रन्थोंकी सूची, कवि व कृतियोंकी अकारादिकी सूचीके साथ १०१० पृष्ठोंमें ग्रन्थ समाप्त हुआ है, जिसमें प्रारम्भमें ३२० पृष्ठकी प्रस्तावना में 'जूनी गुजराती भाषानो संक्षिप्त इतिहास' शीर्षकसे भाषा साहित्यका इतिहास लिखा है जो विद्वानोंके लिये बड़े ही कामकी वस्तु है। इसके ५ वर्ष बाद द्वितीयभाग प्रकाशित हुआ, जिसमें १८वीं शताब्दीके १७९ कवियोंकी ४०१ कृतियोंका परिचय, गद्य-कृतियें जैनकथाकोश, खरतर तथा अंचल गच्छकी पट्टावलियें, राजावली आदि परिशिष्टोंयुक्त ८४५ पृष्ठोंमें दिये हैं। तीसरा भाग दो खंडोमें है, जिनके कुल २३४० पृष्ठ हैं। इसमें ५२० कवियोंके ११११ कृतियोंका एवं १४५ ग्रन्थकारोंकी ५९६ गद्यकृतियोंका तथा २५४ अज्ञातकर्तृक गद्यकृतियोंका परिचय, १२८ पृष्ठकी कवि, कृति, स्थल एवं राजाओंआदिकी अनु-क्रमणिका, २७२ पृष्ठोंमें देशियोंकी महत्त्वपूर्ण विस्तृत सूची तत्पश्चात् जैनेतर कवि एवं कृतियोंका परिचय, कतिपय गच्छोंकी परम्परा-पट्टावली आदिके पश्चात् देसाई महोदयके ग्रन्थोंपर विद्वानोंके अभिप्राय प्रकाशित हैं। आपने इस ग्रन्थकी महत्त्वपूर्ण ५०० पृष्ठकी प्रस्तावना+ लिखनेका विचार हमें सूचित किया

+इस प्रस्तावना के सम्बन्धमें हमें निम्नोक्त सूचनायें आपने पत्रोंमें दी थीं :-

१- ता० १२-१२-४७ के पत्रमें "प्रस्तावना ५०० पृष्ठ नी लखवानी बाकी छे ते लखवानी छे ते माटे छूटक छूटक लखायुं छे ते भेगु करवानुं छे।"

२- ता० २७-१-४३ के पत्रमें "प्रस्तावना लिखी जारही है पृ० ५०० करीब मुद्रांकित होगा।" 'जैन गुर्जर साहित्यका इतिहास" यह मेरी प्रस्तावनाका शीर्षक है, उसमें लवलीन हूं समुद्रमंथन चल रहा है। क्या डालूं क्या नहीं! वाग्देवी सहाय करे और आप जैसेकुं सहाय देनेकी प्रेरणा करे। आपका साहित्य-लेख परिश्रमके लिये हृदयपूर्वक धन्यवाद देकर - लि० सा० सेवक मोहनलालका नमना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

था और उसके नोटिसभी तैयार होगये थे पर उनके एकाएक अस्वस्थ हो जानेसे वह कार्य सम्पन्न न हो सका। अगर यह प्रस्तावना प्रकाशित होजाती तो जैनसाहित्यके सम्बन्धमें बहुत कुछ जानकारी प्राप्त हो सकती थी।

स्वर्गीय देसाई महोदयने अपनी सारी शक्ति लगाकर जिस महान् ग्रन्थको लिखा वह है— 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास।' इस ग्रन्थकी पृष्ठसंख्या १२५० और ६० चित्र हैं। इसमें भगवान महावीर से लेकर अबतकके साहित्यका इतिहास, छोटीमोटी समस्त रचनाओंका उल्लेख एवं जैनाचार्यों, श्रावकों, आदिकी सभी धार्मिक, सामाजिक आदि प्रवृत्तियोंका संक्षेपमें किन्तु बड़ाही सारगर्भित एवं सुरुचिपूर्ण लेखन बड़ी ही प्रमाणिकताके साथ किया गया है। यह ग्रन्थ विद्वान लेखकके महान् धैर्य विद्वत्ता और लेखनकौशलका परिचायक है। इसके संकलनमें लगा २० वर्षका श्रम सफल होगया। आज यह ग्रन्थ विद्वानोंके लिये पथप्रदर्शक है। इसका हिन्दीभाषा-भाषी जनतामें प्रचार करनेके लिये हिन्दीमें अनुवाद होना परमावश्यक है।

देसाईजी ने स्वयं अकेले ग्रन्थोंके लेखन एवं प्रकाशनमें आदिसे अन्ततक परिश्रम किया। उन्होंने निजी खर्चसे साहित्यिक यात्रायें कीं, ज्ञानभंडार देखे, पुस्तकें संग्रहीत कीं। लेखन, प्रूफ अवलोकन, अनुक्रमणिका-निर्माणादि समस्त कार्य बिना किसीकी साहाय्यसे करना और अपने वकालत पेशेमें भी संलग्न रहना उनकी जैनसाहित्यके प्रति महान् प्रीति एवं एक लग्नशील कितना काम कर सकता है इसका ज्वलंत उदाहरण है। वास्तवमें देसाईजीकी सेवासे कान्फ्रेन्सका गौरव बढ़ा, यह स्वीकार करनेमें संकोच नहीं होना चाहिये।

देसाईजीकी अविश्रान्त लेखनी जैनसाहित्योद्धार-प्रकाशनार्थ जीवन भर चली, जिसके फलस्वरूप उपर्युक्त ग्रन्थों एवं पत्रोंके सम्पादकके अलावा 'सनातन जैन' भी' दो वर्षतक उपसम्पादक रहें। इंग्रेजीमें आपने श्रीमद् यशोविजयजीका जीवनचरित्र एवं नयकर्णिका ग्रन्थ संकलित किये। सिंघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित सिद्धिचन्द्रगणि कृत भानुचन्द्रचरित्रको भी इंग्रेजीकी विस्तृत प्रस्तावनायुक्त सम्पादित किया। गुजरातीमें (१) जैनसाहित्य अने श्रीमन्तो नु कर्त्तव्य (२) जिनदेवदर्शन (३) सामायिक सूत्र-रहस्य (४) जैनकाव्यप्रवेश (५) समकितना ६७ बोल नी सज्झाय (अर्थसहित) (६) जैनऐतिहासिक रासमाला (भा० १) (७) नयकर्णिका (८) उपदेशरत्नकोश (९) स्वामी विवेकानन्दना पत्रो (१०) श्रीसुजसवेलि(?) इत्यादि पुस्तकें लिखीं एवं सम्पादन कीं।

इनके अतिरिक्त हमारी पुस्तक युग-प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिकी आपने विस्तृत प्रस्तावना लिखी। आत्मानन्द-शताब्दी स्मारक ग्रन्थका आपने विद्वत्तापूर्वक सम्पादन किया। सामयिक पत्रोंमें समय समय पर आपके शोधपूर्ण लेख आते रहते थे। कविवर समयसुन्दर पर आपने विस्तृत खोज की और सुन्दर निबन्ध लिखकर गुजराती साहित्य परिषदके ८वें अधिवेशनमें सुनाया, वह लेख जैनसाहित्यसंशोधक एवं आनन्दकाव्यमहोदधिके ७वें मौक्तिकमें भी चार प्रत्येक बुद्ध रासके साथ छपा है। इसी प्रकार कवि ऋषभदासका विस्तृत परिचय ८वें मौक्तिकमें प्रकाशित हुआ है। हमारी साहित्य प्रवृत्तिमें प्रधानतः (खासकर) महाकवि समयसुन्दरजीकी कृतियां ही प्रेरणादात्री हुईं और श्रीयुत देसाईके इस विद्वत्तापूर्ण लेखने हमें मार्ग दिखाया। बम्बईकी पर्युषणपर्व-व्याख्यानमालामें भी आप बड़ी दिलचस्पीसे भाग लेते और जनताको अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यानों द्वारा लाभान्वित करते रहे हैं।

सभा सोसाइटियोंसे आपको विशेष प्रेम था। नागरी प्रचारिणी सभाके आप सदस्य थे ही। जैनधर्म प्रसारकसभा, आत्मानन्दसभा (भावनगर) और जैनएज्युकेशनलबोर्ड बम्बईके आप आजीवन-सभासद थे। जैन श्वे० कौन्फ्रेन्सकी स्टेंडिंग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कमिटीके, महावीर जैनविद्यालयकी मैनेजिंग कमेटी के, श्रीमांगरोल जैनसभाकी मैनेजिंग कमेटीके भी आप सदस्य थे। हमारे साथ आपका वर्षोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध था। फुरसत मिलने पर आप हमारे पत्रोंका विस्तृत उत्तर देते, आपके कतिपय पत्र तो दस दस पन्द्रह पन्द्रह पेज लम्बे हैं। आप कई वर्षोंसे बीकानेर आनेका विचार कर रहे थे। एकबार आपका आना निश्चित होगया था और आपकी प्रेरणासे हमने श्रीचिन्तामणिजीके भण्डारकी प्राचीन प्रतिमाएँ भी प्रयत्न कर निकलवायीं इधर देसाई महोदय बम्बईसे बीकानेरके लिये रवाना होकर राजकोट भी आगये पर सालीके ब्याह पर रुक जाना पड़ा। इसप्रकार कईबार विचार करते करते सन् १९४० में हमारे यहां पधारे और १५–२० दिन हमारे यहां ठहरके अविश्रांत परिश्रम कर हमारे संग्रहकी समस्त भाषाकृतियें (रास, चौपाई आदि) एवं बीकानेरके अन्य समस्त संग्रहालयोंके रास चौपाई आदिके विवरण तैयार किये। जिनका उपयोग जैन गुर्जर कविओ भा० ३ में किया। इस ग्रन्थकी तैयारीमें अत्यधिक मानसिक परिश्रम आदिके कारण सन् १९४४ में आपका मस्तिष्क शून्यवत् होगया और अन्तमें २–१२–४५ के रविवारके प्रात: काल राजकोटमें स्वर्ग सिधारे।

आपने श्रीमद् यशोविजयजीकी समस्त लघु–कृतियोंका संग्रह किया था। उसे प्रकाशन करनेके लिये किसी मुनिराजने देसाई महोदयसे सारी कृतियें लेकर उन्हींसे संकलन सम्पादन कराके प्रकाशित कीं पर सम्पादकका नाम देसाई महोदय का न रखकर प्रस्तावनामें उल्लेखमात्र कर दिया देसाई महोदयके प्रति यह अन्यायही हुआ। यद्यपि स्वर्गीय देसाई महोदयको नामका लोभ तनिक भी नहीं था। किन्तु नैतिकताके नाते ऐसा कार्य किसीभी मुनि कहलानेवाले तो क्या पर गृहस्थकी भी उचित नहीं है। देसाई महोदय यह चाहते तो इस विषय में हस्तक्षेप कर सकते पर उन्हें नामकी परवाह नहीं, कामका ख्याल था और इसी दृष्टिसे उन्होंने कभी शब्दोच्चारण भी इस विषयमें नहीं किया।

हमारा कर्त्तव्य— आपने बारामासोंका परिश्रम–पूर्वक विशाल संग्रह किया जिसे अपने मित्र मंजूलाल मजुमदारको दिया, वह अब तक अप्रकाशित है जिसे अवश्य प्रकाशित कराना चाहिये। देसाईजी बड़े परिश्रमी और अध्यवसायी थे जहां कहीं इतिहास, भाषा या साहित्य सम्बन्धी कोई महत्त्वपूर्ण कोई कृति मिलती स्वयं नकल करलेते या संग्रह करलेते थे। इस तरह आपके पास बड़ाही महत्त्वपूर्ण विशाल संग्रह होगया था। इस संग्रहकी सुरक्षाके हेतु हमने जैनपत्रादिमें लेख एवं पत्रद्वारा कान्फ्रेंस आदिका ध्यान आकृष्ट किया पर अद्यावधि कार्य कुछभी हुआ प्रतीत नहीं होता। अब एक बार हम पुन: जैन० श्वे० कान्फ्रेंसका ध्यान निम्नोक्त बातोंकी तरफ आकृष्ट करते हैं। आशा है, कान्फ्रेंस, उनके मित्र, सहयोगीवर्ग सक्रिय योगदानपूर्वक स्वर्गीय देसाई महोदयके प्रति फर्ज अदा करेंगे।

श्वे० कान्फ्रेंस एवं जैनसमाजके कतिपय आवश्यक कर्त्तव्य इस प्रकार हैं —

१– देसाईजीके संग्रहको सुरक्षित कर कान्फ्रेंस, उसे सुसम्पादित करवाके प्रकाशन आदि द्वारा सर्व सुलभ करे।

२– उनके जीवनचरित्र व पत्रादि सामग्री जिनके पास हो संग्रहकर प्रकाशित करें।

३– उनकी स्मृतिमें एक स्मारकग्रन्थ, विद्वानोंके लेख, संस्मरणादि एकत्र कर प्रकाशित करें।

४– उनकी स्मृतिमें एक ग्रन्थमाला चालू करें जो इतिहास, साहित्य, पुरातत्त्व और जैन स्थापत्यादि विषयों पर उत्तमोत्तम ग्रन्थ प्रकाशित करे।

५– आपके "जैन गुर्जर साहित्यके इतिहास" की सामग्रीको इकट्ठा कर एवं अधिकारी विद्वानसे सम्पादित कराके प्रकाशन करना परमावश्यक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार्यकल्प पं० टोडरमल्लजी

(ले०— पं० परमानन्द जैन, शास्त्री)

जीवन-परिचय—

हिन्दी साहित्यके दिगम्बरजैन विद्वानोंमें पण्डित टोडरमल्लजीका नाम खासतौरसे उल्लेखनीय है। आप हिन्दीके गद्य-लेखक विद्वानोंमें प्रथम कोटिके विद्वान हैं। विद्वत्ताके अनुरूप आपका स्वभावभी विनम्र और दयालु था। स्वाभाविक कोमलता और सदाचारिता आपके जीवनके सहचर थे। अहङ्कार तो आपको छू भी नहीं गया था। आन्तरिकभद्रता और वात्सल्यका परिचय आपकी सौम्य आकृतिको देखकर सहजही हो जाता था। आपका रहन-सहन बहुतही सादा था। साधारण अङ्गरखी, धोती और पगड़ी पहना करते थे। आध्यात्मिकताका तो आपके जीवनके साथ घनिष्ठ-सम्बन्ध था। श्रीकुन्दकुन्दादि महान् आचार्योंके आध्यात्मिक-ग्रन्थोंके अध्ययन, मनन एवं परिशीलनसे आपके जीवनपर अच्छा प्रभाव पड़ा हुआ था। अध्यात्मकी चर्चा करते हुए आप आनन्द विभोर हो उठते थे, और श्रोता-जन भी आपकी वाणीको सुनकर गद्गद हो जाते थे। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओंके आप अपने समयके अद्वितीय और सुयोग्य विद्वान थे। आपका क्षयोपशम आश्चर्यकारी था, और वस्तुतत्त्वके विश्लेषणमें आप बहुत ही दक्ष थे। आपका आचार एवं व्यवहार विवेकयुक्त और मृदु था।

यद्यपि पण्डितजीने अपना और अपने माता पितादि कुटुम्बिजनोंका कोई परिचय नहीं दिया और न अपने लौकिक जीवनपर ही कोई प्रकाश डाला है। फिर भी लब्धिसार ग्रन्थकी टीका-प्रशस्ति आदि सामग्रीपर से उनके लौकिक और आध्यात्मिक जीवन का बहुत कुछ पता चल जाता है। प्रशस्तिके वे पद्य इस प्रकार हैं:—

मैं हूं जीवद्रव्य नित्य चेतनास्वरूप मेरो-
लग्यो है अनादितैं कलङ्क कर्ममलकौ,
ताहीकौ निमित्त पाय रागादिक भाव भये
भयो है शरीरकौ मिलाप जैसौ खलकौ।
रागादिक भावनिकौ पायकें निमित्त पुनि-
होत कर्मबन्ध ऐसो है बनाव कलकौ,
ऐसैं ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग
बनै तौ बनै यहां उपाव निज थलकौ ॥३६॥
रमापति स्तुतगुन जनक जाकौ जोगीदास।
सोई मेरो प्रान है धारै प्रकट प्रकाश ॥३७॥

मैं आतम अरु पुद्गलखंध, मिलिकैं भयो परस्पर बंध।
सो असमान जातिपर्याय, उपज्यो मानुष नाम कहाय ॥
मात गर्भमें सो पर्याय, करिकैं पूरण अङ्ग सुभाय।
बाहर निकसि प्रकट जबभयो, तब कुटुम्बको भेलो भयौ
नाम धरयो तिन हर्षित होय, टोडरमल्ल कहैं सब कोय।
ऐसौ यहु मानुष पर्याय, वधतभयो निज काल गमाय ॥
देस ढुढाहड मांहि महान्, नगर सवाई जयपुर थान।
तामें ताको रहनौ घनो, थोरो रहनो ओढै बनो ॥४१॥
तिसपर्याय-विषै जो कोय, देखन जाननहारो सोय।
मैं हूं जीवद्रव्य गुनभूप, एक अनादि अनंत अरूप ॥
कर्म उदयको कारण पाय, रागादिक होहैं दुखदाय।
ते मेरे औपाधिकभाव, इनिकौं विनशै मैं शिवराव ॥
वचनादिक लिखनादिकक्रिया, वर्णादिक अरुइन्द्रियहिया
ये सब हैं पुद्गलका खेल, इनिमें नांहि हमारो मेल ॥४४॥

इन पद्योंपर से जहां उनका आध्यात्मिक जीवन-परिचय मिलता है वहां यह भी प्रकट है कि आपके लौकिक जीवनका नाम टोडरमल्ल था और पिताका नाम जोगीदास तथा माताका नाम रमादेवी था। दूसरे स्रोतोंसे यह भी स्पष्ट है कि आप खण्डेलवाल जातिके भूषण थे और आपके वंशज साहूकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहलाते थे। पण्डितजी विवाहित थे और उनके दो पुत्र थे। एकका नाम हरिचन्द और दूसरेका नाम गुमानीराम था। हरिचन्दको अपेक्षा गुमानीरामका क्षयोपशम विशेष था, वह प्रायः अपने पिताके समान ही प्रतिभा-सम्पन्न थे और इस लिये पिताके अध्ययन तत्त्वचर्चादि कार्य्योंमें यथायोग्य सहयोग देते रहते थे। ये स्पष्टवक्ता थे और शास्त्रसभामें श्रोताजन उनसे खूब सन्तुष्ट रहते थे। इन्होंने पिता के स्वर्गगमनके दश बारह वर्ष बाद लगभग सं०१८३७ में गुमानपंथकी स्थापना की थी१।

इस गुमानपंथका क्या स्वरूप था? और उसमें किन किन बातोंकी विशेषता थी यह अभी ज्ञात नहीं हो सका, जयपुरमें गुमानपंथका एक मन्दिर बना हुआ है जिसमें पं० टोडरमल्ल जीके सभी ग्रंथोंकी स्वहस्त-लिखित प्रतियां सुरक्षित हैं। यह मंदिर उक्त पंथकी स्मृतिको आज भी ताजा बनाये हुये है।

पंडित टोडरमल्ल जीके घर पर विद्याभिलाषियों का खासा जमघट लगा रहता था, विद्याभ्यासके लिए घर पर जो भी व्यक्ति आता था उसे बड़े प्रेमके साथ विद्याभ्यास कराते थे। इसके सिवाय तत्वचर्चा का तो वह केन्द्र ही बन रहा था। वहां तत्त्वचर्चाके रसिक मुमुक्षुजन बराबर आते रहते थे और उन्हें आपके साथ विविध विषयोंपर तत्त्वचर्चा करके तथा अपनी शंकाओंका समाधान सुनकर बड़ा ही संतोष होता था। और इस तरह वे पंडितजीके प्रेममय विनम्र व्यवहारसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते थे। आपके शास्त्र प्रवचनमें जयपुरके सभी प्रतिष्ठित चतुर और विशिष्ट श्रोताजन आते थे। उनमें दीवान रतनचन्दजी२ अजबरायजी, त्रिलोकचन्दजी पाटनी, महारामजी३ त्रिलोकचन्दजी सोगानी, श्रीचन्दजी सोगानी और नेनचन्दजी पाटणीके नाम खासतौरसे उल्लेखनीय

१ चुनाचे श्वेताम्बरी मुनि शाँतिविजयजी भी अपनी मानवधर्मसंहिता (शांतसुधानिधि) नामक पुस्तकके पृष्ठ १६७ में लिखते हैं। कि- "बीस पंथमेंसे फु(फू) टकर संवत १७२६ में ये अलग हुए, जयपुरके तेरापंथियोंसे पं० टोडरमल्ल के पुत्र गुमानीराम जीने संवत १८३७ में गुमान पंथ निकाला।"

२ दीवान रतनचन्दजी और बालचन्दजी उस समय जयपुर के साधर्मियों में प्रमुख थे। बड़े ही धर्मात्मा और उदार सज्जन थे। रतनचन्दजीके लघुभ्राता बधीचन्दजी दीवान थे। दीवान रतनचन्दजी वि० सं० १८२१ से पहले ही राजा माधवसिंह जीके समयमें दीवान पद पर आसीन हुए थे और वि० सं० १८२६ में जयपुरके राजा पृथ्वीसिंहके समयमें थे, और उसके बादभी कुछसमय रहे हैं। पं० दौलत रामजीने दीवान रतनचन्दजीकी प्रेरणासे वि० सं० १८२७ में पं टोडरमल्लजीकी पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी अधूरी टीकाको पूर्ण किया था जैसाकि उसकी प्रशस्तिके निम्नवाक्योंसे प्रकट है :—

साधर्मिनमें मुख्य हैं रतनचन्द दीवान।
पृथ्वीसिंह नरेशको श्रद्धावान सुजान ॥६॥
तिनके अति रुचि धर्मसौं साधर्मिनसों प्रीत।
देव-शास्त्र—गुरुकी सदा उरमें महा प्रतीत ॥७॥
आनन्द सुत तिनकौ सखा नाम जु दौलतराम।
भृत्य भूप को कुल वणिक जाके बसवे धाम ॥८॥
कछु इक गुरु प्रतापतैं कीनों ग्रन्थ अभ्यास।
लगन लगी जिन धर्मसौं जिन दासनको दास ॥९॥
तासूं रतन दीवानने कही प्रीति धर येह।
करिये टीका पूरणा उर धर धर्म सनेह ॥१०॥
तब टीका पूरी करी भाषा रूप निधान॥
कुशल होय चहु संघको लहैं जीव निज ज्ञान॥११॥
÷ ÷ ÷ ÷
अट्ठारहसै ऊपरै संवत सत्ताबीस॥
मगशिर दिन शनिवार है सुदि दोयज रजनीस॥१३॥

३ महाराम जी ओसवालजातिके उदासीन श्रावक थे बड़े ही बुद्धिमान थे और यह पं टोडरमल्ल जीके सा चर्चा करनेमें विशेष रस लेते थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। बसवा निवासी पं०देवीदास गोधा को भी आपके पास कुछ समय तक तत्त्वचर्चा सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था१।

पं० टोडरमल्लजी केवल अध्यात्मग्रंथोंके ही वेत्ता या रसिक नहीं थे; किन्तु साथमें व्याकरण, साहित्य, सिद्धान्त और दर्शनशास्त्रके अच्छे विद्वान थे। आपकी कृतियोंका ध्यानसे समीक्षण करने पर इस विषयमें संदेहको कोई गुंजायश नहीं रहती। आपके टीका ग्रन्थोंकी भाषा यद्यपि ढूंढारी (जयपुरी) है फिर भी उसमें व्रज भाषाकी पुट है और वह इतनी परिमार्जित है कि पढ़ने वालोंको उसका सहज ही परिज्ञान हो जाता है। आपकी भाषामें प्रौढ़ता सरसता और सरलता है वह श्रद्धा निःस्पृहता और निःस्वार्थ भावना से ओत-प्रोत है जो पाठकोंको बहुत ही रुचिकर प्रतीत होती है। उसमें आकर्षण मधुरता और लालित्य पद पद में पाया जाता है और इसीसे जैन समाजमें उसका आज भी समादर बना हुआ है। जैसा कि उनके मोक्षमार्ग प्रकाशककी निम्न पंक्तियोंसे प्रकट है:—

"कोऊ कहेगा सम्यग्दृष्टि भी तो बुरा जानि परद्रव्यकौं त्यागै है। ताका समाधान— सम्यग्दृष्टि पर द्रव्यानिकों बुरा न जानै है। आप सरागभावकौं छोरे, तातैं ताका कारणका भी त्याग हो है। वस्तु विचारें कोई परद्रव्य तौ भला बुरा है नाहीं। कोऊ कहैगा, निमित्तमात्र तो है। ताका उत्तर-परद्रव्य जोरावरी तैं क्योंई विगारता नाहीं। अपने भाव विगरैं तब वह भी बाह्य निमित्त है। बहुरि वाका निमित्त बिना भी भाव विगरैं हैं। तातैं नियमरूप निमित्त भी नाहीं। ऐसे परद्रव्यका दोष देखना मिथ्या भाव है। रागादिक भावही बुरे हैं। सो याकें ऐसी समझ नाहीं यह पर द्रव्यनिका दोषदेखि तिनविषैं द्वेषरूप उदासीनता करै है। सांची उदासीनता तौ वाका नाम है जो कोई भी परद्रव्यका गुण वा दोष न भासै, तातैं काहू कौं भला बुरा न जानैं, परतैं किछु भी प्रयोजन मेरा नाहीं, ऐसा मानि साक्षिभूत रहै, सो ऐसी उदासीनता ज्ञानी ही कैं होय।"

(पृ० २४३-४)

यहां पंडितजी ने सम्यग्दृष्टिकी आत्मपरिणतिरूप वस्तुतत्त्वका भी कितना सुन्दर विवेचन किया है जो अनुभव करते ही बनता है।

समकालीन धार्मिकस्थिति और विद्वद्गोष्ठी——

उस समय जयपुरकी ख्याति जैनपुरीके रूपमें हो रही थी, वहां जैनियोंके सात-आठ हजार घर थे, जैनियोंकी इतनी गृहसंख्या उस समय सम्भवतः अन्यत्र कहीं भी नहीं थी। इसीसे ब्रह्मचारी रामलालजीके शब्दोंमें वह साक्षात् 'धर्मपुरी' थी। वहां के अधिकांश जैन राज्यके उच्च-पदोंपर नियुक्त थे, और वे राज्यमें सर्वत्र शांति एवं व्यवस्थामें अपना पूरा पूरा सहयोग देते थे। दीवानरतनचन्द जी और बालचन्द जी उनमें प्रमुख थे। उस समय माधवसिंहजी प्रथम का राज्य चल रहा था, वे बड़े प्रजावत्सल थे। राज्य में जीव-हिंसाकी मनाई थी। और वहां कलाल, कसाई और वेश्याएं नहीं थीं। जनता प्राय: सप्तव्यसनसे रहित थी। जैनियोंमें उस समय अपने धर्मके प्रति विशेष प्रेम और आकर्षण था और प्रत्येक साधर्मी भाईके प्रति वात्सल्य तथा उदारताका व्यवहार किया जाता था। जिनपूजन, शास्त्रस्वाध्याय तत्त्वचर्चा सामायिक और शास्त्रप्रवचनादि क्रियायोंमें श्रद्धा, भक्ति और विनयका अपूर्व दृश्य देखनेमें आता था। कितने ही स्त्री-पुरुष गोम्मटसारादि सिद्धांत-ग्रन्थोंकी तत्त्वचर्चासे परिचित हो गये थे। महिलाएँ भी धार्मिक-क्रियाओंके सद्अनुष्ठानमें यथेष्ठ भाग लेने लगीं थीं। पं० टोडरमल्लजीके शास्त्र-प्रवचनमें

१ "सो दिल्लीसूं पढ़ कर वसुवा आय पाछैं जयपुरमें थोड़े दिन टोडरमल्ल जी महाबुद्धिमानके पासि सुननेका निमित्त मिल्या, बसुवा गए"—

देखो सिद्धान्तसारकी टीकाप्रशस्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रोताओंकी अच्छी उपस्थिति रहती थी और जिनकी संख्या सातसौ-आठसौसे अधिक हो जाया करती थी। उस समय जयपुरमें कई विद्वान् थे और पंठन-पाठनकी सब व्यवस्था सुयोग्यरीतिसे चल रही थी। आज भी जयपुरमें जैनियोंकी संख्या कई सहस्र है और उनमें कितने ही राज्यके पदोंपर भी प्रतिष्ठित हैं।

सं० १८२१ में जयपुरमें इन्द्रध्वज पूजाका महान् उत्सव हुआ था। उस समयकी ब्रह्मचारी रामलाल जी की लिखी हुई पत्रिकासे१ ज्ञात होता है कि उसमें राज्यकी ओरसे सब प्रकारकी सुविधा प्राप्त थी, और दरबारसे यह हुक्म आया था कि "थां की पूजाजी के अर्थि जो वस्तु चाहिजे सो ही दरबारसे ले जावो" इसी तरहकी सुविधा वि० की १५वीं १६वीं शताब्दीमें ग्वालियरमें राजा डूङ्गरसिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिंह के राज्य-कालमें जैनियोंको प्राप्त थी, और उनके राज्यमें होने वाले प्रतिष्ठा महोत्सवोंमें राज्यकी ओरसे सब व्यवस्था की जाती थी।

रचनाएं और रचनाकाल—

पं० टोडरमल्लजीकी कुल नौ रचनाएं हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१—गोम्मटसारजीवकांडटीका, २—गोम्मटसार-कर्मकाण्डटीका, ३—लब्धिसार-क्षपणासारटीका, ४—त्रिलोकसारटीका, ५—आत्मानुशासनटीका, ६—पुरुषार्थसिद्ध्युपायटीका, ७—अर्थसंदृष्टिअधिकार, ८—रहस्यपूर्ण चिट्ठी, ९— और मोक्षमार्ग प्रकाशक।

इनमें आपकी सबसे पुरानी रचना रहस्यपूर्ण चिट्ठी है जो कि विक्रम सम्बत् १८११ की फाल्गुणवदि पञ्चमीको मुलतानके अध्यात्मरसके रोचक खानचंदजी गङ्गाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथजी आदि अन्य साधर्मी भाइयोंको उनके प्रश्नोंके उत्तररूपमें लिखी गई थी। यह चिट्ठी अध्यात्मरसके अनुभवसे ओत-प्रोत है। इसमें आध्यात्मिक प्रश्नोंका उत्तर कितने सरल एवं स्पष्ट शब्दोंमें विनयके साथ दिया गया है, यह देखते ही बनता है। चिट्ठीगत शिष्टाचार-सूचक निम्न वाक्य तो पण्डितजीकी आन्तरिक-भद्रता तथा वात्सल्य का खासतौरसे द्योतक है—

"तुम्हारे चिदानन्दघनके अनुभवसे सहजानंदकी वृद्धि चाहिये।"

गोम्मटसारादि की सम्यग्ज्ञानचन्द्रिकाटीका—

गोम्मटसारजीवकांड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार क्षपणासार और त्रिलोकसार इन मूल—ग्रन्थोंके रचयित आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती हैं। जो वीरनन्दि इन्द्रनंदिके वत्स तथा अभयनन्दिके पुत्र थे। और जिनका समय विक्रमकी ११वीं शताब्दी है।

गोम्मटसार ग्रन्थपर अनेक टीकाएँ रची गई है किन्तु वर्तमानमें उपलब्ध टीकाओंमें मन्दप्रबोधिक सबसे प्राचीन टीका है। जिसके कर्ता अभयचन्द्र सैद्धांतिक ❀ हैं। इस टीकाके आधारसे ही केशववर्णीने, जो अभयसूरिके शिष्य थे, कर्नाटक भाषामें 'जीवतत्त्वप्रबोधिका' नामकी टीका भट्टारक धर्मभूषणके आदेश से शक सं० १२८१ (वि० सं० १४१६) में बनाई है। यह टीका कोल्हापुरके शास्त्रभण्डारमें सुरक्षित है और अभी तक अप्रकाशित है। मन्दप्रबोधिका और केशववर्णीकी उक्त कनड़ी टीकाका आश्रय लेकर भट्टारक नेमिचन्द्रने अपनी संस्कृत टीका बनाई है और उसका नाम भी कनड़ी टीकाकी तरह 'जीवतत्त्वप्रबोधिका' रक्खा गया है। यह टीकाकार नेमिचन्द्र मूलसंघ शारदागच्छ बलात्कारगणके विद्वान् थे, और भट्टारक ज्ञानभूषणके शिष्य थे। भट्टारक ज्ञानभूषणका समय विक्रमकी १६वीं शताब्दी है क्योंकि इन्होंने वि० सं० १५६० में 'तत्त्वज्ञानतरङ्गिणी नामक ग्रन्थकी रचना की है। अतः टीकाकार नेमिचंद्र का भी समय वि० की १६ वीं शताब्दी है। इनकी जीवतत्त्वप्रबोधिका' टीका मल्लिभूपाल अथवा सालुव-मल्लिराय नामक राजाके समयमें लिखी गई है औ

१ देखो, वीरवाणी अङ्क ३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिनका समय डा० ए० एन० उपाध्येने ईसाकी १६ वीं शताब्दी का प्रथम चरण निश्चित किया है + । इससे भी इस टीका और टीकाकारका उक्त समय अर्थात् ईसाकी १६ वीं शताब्दीका प्रथमचरण व विक्रमकी १६ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध सिद्ध है ।

भ० नेमिचन्द्रकी इस संस्कृत टीकाके आधारसे ही पंडित टोडरमल्ल जीने अपनी भाषाटीका लिखी है । और उस टीकासे उन्होंने भ्रमवश÷ केशववर्णीकी टीका समझ लिया है । जैसा कि जीवकाण्ड टीका-प्रशस्तिके निम्न पद्यसे प्रकट है :—

केशववर्णी भव्य विचार,कर्णाटक टीका अनुसार ।
संस्कृत टीका कीनी एहु, जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु ॥

पंडित जीकी इस भाषाटीकाका नाम 'सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका' है जो उक्त संस्कृत टीकाका अनुवाद होते हुए भी उसके प्रमेयका विशद विवेचन करती है पंडित टोडरमल्ल जीने गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड लब्धिसार-क्षपणासार-त्रिलोकसार इन चारों ग्रंथों की टीकाएं यद्यपि भिन्न भिन्न रूप से की हैं किन्तु उन में परस्पर सम्बन्ध देखकर उक्त चारों ग्रंथोंकी टीकाओंको एक करके उनका नाम 'सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका' रकखा है । जैसाकि पं० जी लब्धिसार भाषा-टीका प्रशस्तिके निम्न पद्यसे स्पष्ट है :—

"या विधि गोम्मटसार लब्धिसार ग्रंथनि की,
भिन्न भिन्न भाषाटीका कीनी अर्थ गाय कैं ।
इनिकैं परस्पर सहायपनौ देख्यौ ।
तातैं एक करि दई हम तिनिको मिलायकैं ॥
सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका धर्यो है याका नाम ।
सो ही होत है सफल ज्ञानानंद उपजाय कैं ॥
कलिकाल रजनीमें अर्थकौ प्रकाश करै ।
यातैं निज काज कीनै इष्टभावभायकैं ॥३०॥

इस टीकामें उन्होंने आगमानुसार ही अर्थ प्रतिपादन किया है, अपनी ओरसे कषायवश कुछभी नहीं लिखा, यथा—

आज्ञा अनुसारी भये अर्थ लिखे या मांहि ।
धरि कषाय करि कल्पना हम कछु कीनों नांहि॥३३॥

टीकाप्रेरक श्रीरायमल्ल और उनकी पत्रिका—

इस टीकाकी रचना अपने समकालीन रायमल्ल नामके एक साधर्मी श्रावकोत्तमकी प्रेरणासे की गई है जो विवेकपूर्वक धर्मका साधन करते थे१ । रायमल्ल जी बाल ब्रह्मचारी थे एक देश संयमके धारक थे । जैन धर्मके महान श्रद्धानी थे और उसके प्रचारमें संलग्न रहते थे साथ ही बड़े ही उदार और सरल थे । उनके आचारमें विवेक और विनयकी पुट थी । वे अध्यात्म शास्त्रोंके विशेष प्रेमी थे और विद्वानोंसे तत्त्व-चर्चा करनेमें बड़ा रस लेते थे पं० टोडरमल्ल-जीकी तत्त्व-चर्चासे वे बहुत ही प्रभावित थे । इनकी इस समय दो कृतियां उपलब्ध हैं— एक ज्ञानानंद निर्भर निजरस-श्रावकाचार और दूसरी कृति चर्चा-संग्रह है जो महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक चर्चाओंको लिये हुये है । इनके सिवाय दो पत्रिकायें भी प्राप्त हुई हैं जो 'वीरवाणी' में प्रकाशित हो चुकी हैं२ । उनमें से प्रथम पत्रिकामें अपने जीवनकी प्रारम्भिक घटनाओंका समुल्लेख करते हुए पण्डित टोडरमल्ल जीसे गोम्मट-सारकी टीका बनानेकी प्रेरणाकी गई है और वह सिंघाणा नगरमें कब और कैसे बनी इसका पूरा विवरण दिया गया है । वह पत्रिका इस प्रकार है —

(पिछले २८ वें पृष्ठकी यह टिप्पणी है भूलसे वहां न छप सकी)

* अभयचन्द्रकी यह टीका अपूर्ण है, और जीवकांडकी ३८३ गाथा तक ही पाई जाती है, इसमें ८३ नं० की गाथाकी टीका करते हुए एक 'गोम्मटसार पञ्जिका' टीकाका उल्लेख निम्न शब्दोंमें किया है । "अथवा सम्मूर्छनगर्भो-पपातान्नाश्रित्य जन्म भवतीति गोम्मटसारपञ्जिकाकारादीनाम-भिप्रायः"

+ देखो, अनेकान्त वर्ष ४ किरण १

÷ देखो, अनेकान्त वर्ष ४ किरण १

१ रायमल्ल साधर्मी एक, धर्मसधैया सहित विवेक ।
सो नानाविध प्रेरक भयो, तब यह उत्तम कारज थयो

२ देखो, वीरवाणी वर्ष १ अङ्क २, ३ ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"पीछैं सेखावटीविषैं सिंघाणा नग्र तहां टोडर-मल्लजी एक दिली (ल्ली) का बड़ा साहूकार साधर्मी ताके समीप कर्म–कार्यके अर्थि बहां रहै, तहां हम गए अर टोडरमल्लजीसे मिले, नाना प्रकारके प्रश्न किये। ताका उत्तर एक गोम्मटसार नामा ग्रंथकी साखिसूं देते गए। ता ग्रन्थकी महिमा हम पूर्वैं सुणी थी तासूं विशेष देखी, अर टोडरमल्लजीका (के) ज्ञानकी महिमा अद्भुत देखी, पीछैं उनसूं हम कही–तुम्हारै या ग्रंथका परचै निर्मल भया है, तुमकरि याकी भाषाटीका होय तौ घणां जीवांका कल्याण होय अर जिनधर्मका उद्योत होइ। अबहीं कालके दोष करि जीवांकी बुद्धी तुच्छ रही है तौ आगैं यातैं भी अल्प रहैगी। तातैं ऐसा महान् ग्रंथ पराक्रत ताकी मूल गाथा पंद्रहसैं+ १५०० ताकी टीका संस्कृत अठारह हजार १८००० ताविषैं अलौकिक चरचाका समूह संदृष्टि वा गणित शास्त्रांकी आम्नाय संयुक्त लिख्या है ताकी भाव भासना महा कठिन है। अर याके ज्ञानकी प्रवर्ति पूर्वैं दीर्घकाल पर्यंत लगाय अब ताइं नाहीं तौ आगैं भी याकी प्रवर्ती कैसैं रहैगी, तातैं तुम या ग्रंथकी टीका करनेका उपाय शीघ्र करौ, आयुका भरोसा है नाहीं। पीछैं ऐसें हमारे प्रेरकपणाका निमित्त करि इनके टीका करने का अनुराग भया। पूर्वैं भी याकी टीका करने का इनका मनोरथ था ही, पाछैं हमारे कहनें करि विशेष मनोरथ भया, तब शुभदिन मुहूरत विषैं टीका करने का प्रारम्भ सिंघाणा नग्रविषैं भया। सो वे तौ टीका बणावते गए हम बांचते गये। बरस तीनमें गोम्मट-सारग्रंथकी अडतीसहजार ३८००० लब्धिसार–क्षप-णासारग्रंथकी तेरहहजार १३००० त्रिलोकसारग्रंथ की चौदाहजार १४००० सब मिलिच्यारि ग्रंथांकी पैंसठ हजार टीका भई। पीछैं सवाई जयपुर आये तहां गोम्मटसारादिच्यारों ग्रंथोंकू सोधि याको बहुत प्रति उतराईं। जहां सैली थी तहां तहां सुधाइ सुधाइ पधराईं ऐसे यां ग्रंथांका अवतार भया"।

इस पत्रिकागत विवरण परसे यह स्पष्ट है कि उक्त सम्यग्ज्ञानचन्द्रिकाटीका तीन वर्षमें बनकर समाप्त हुई थी जिसकी श्लोक संख्या पैंसठ हजारके करीब है। और जिसके संशोधनादि तथा अन्य प्रतियोंके उतरवाने में प्रायः उतनाही समय लगा होगा। इसीसे यह टीका सं० १८१८ में समाप्त हुई है। इस टीकाके पूर्ण होने पर पण्डितजी बहुत आल्हादित हुए और उन्होंने अपनेको कृतकृत्य समझा। साथ ही अन्तिम मङ्गलके रूपमें पञ्चपरमेष्ठीकी स्तुति की और उन जैसी अपनी दशाके होनेकी अभिलाषा भी व्यक्त की[1]। यथा—

आरंभो पूरण भयो शास्त्र सुखद प्रासाद।
अब भये कृतकृत्य हम पायो अति आल्हाद॥
\+ + + + + +
अरहन्त सिद्ध सूर उपाध्याय साधु सर्व,
अर्थके प्रकाशी मङ्गलीक उपकारी हैं।
तिनकौं स्वरूप जानि रागतैं भई भक्ति,
कायकौं नमाय स्तुतिकौं उचारी है॥
धन्य धन्य तुमही सब काज भयो,
कर जोरि बारम्बार बंदना हमारी है।
मङ्गल कल्याण सुख ऐसो हम चाहत हैं,
होहु मेरी ऐसी दशा जैसी तुम धारी है॥

यही भाव लब्धिसारटीका प्रशस्तिमें गद्यरूपमें प्रकट किया है।

लब्धिसारकी टीका वि० सं० १८१८ की माघशुक्ला

\+ रायमल्लजीने गोम्मटसारकी मूल गाथा संख्या पंद्रह सौ १५०० बतलाई है जब कि उसकी संख्या सत्तरहसौ पांच १७०५ है, गोम्मटसार कर्मकाण्डकी ६७२ और जीवकांडकी ७३३ गाथा सख्या मुद्रित प्रतियोंमें पाई जाती है।

[1] "प्रारम्भ कार्यकी सिद्धि होने करि हम आपको कृतकृत्य मानि इस कार्य करनेकी आकुलता रहित होइ सुखी भये, याके प्रसादतैं सर्व आकुलता दूरि होइ हमारैं शीघ्र ही स्वात्मज सिद्धि-जनित परमानन्दकी प्राप्ति होउ।"

लब्धिसार टी० प्रशस्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चमीके दिन पूर्ण हुई है, जैसाकि उसके प्रशस्ति पद्यसे स्पष्ट है:—

संवत्सर अष्टादशयुक्त, अष्टादशशत लौकिकयुक्त ।
माघशुक्लपञ्चमिदिन होत, भयो ग्रन्थ पूरन उद्योत ॥

लब्धिसार-क्षपणासारकी इस टीकाके अन्तमें अर्थसंदृष्टि नामका एक अधिकार भी साथमें दिया हुआ है, जिसमें उक्त ग्रन्थमें आनेवाली अङ्कसंदृष्टियों और उनकी संज्ञाओं तथा अलौकिक गणितके करण-सूत्रोंका विवेचन किया गया है। यह संदृष्टि अधिकार उस संदृष्टि अधिकारसे भिन्न है जिसमें गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्डकी संस्कृतटीकागत अलौकिक गणितके उदाहरणों, करणसूत्रों, संख्यात, असंख्यात और अनन्तकी संज्ञाओं और अङ्कसंदृष्टियोंका विवेचन स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें किया गया है, और जो 'अर्थ-संदृष्टि' इस सार्थक नामसे प्रसिद्ध है। यद्यपि टीका ग्रन्थोंके आदिमें पाई जाने वाली पीठिकामें ग्रन्थगत संज्ञाओं एवं विशेषताओंका दिग्दर्शन करा दिया है जिससे पाठकजन उस ग्रन्थके विषयसे परिचित हो सकें। फिर भी उनका स्पष्टीकरण करनेके लिये उक्त अधिकारोंकी रचना की गई है। इसका पर्यालोचन करनेसे संदृष्टि-विषयक सभी बातोंका बोध हो जाता है। हिन्दी-भाषाके अभ्यासी स्वाध्याय-प्रेमी सज्जन भी इससे बराबर लाभ उठाते रहे हैं। आपकी इन टीकाओंसे ही दिगम्बर समाजमें कर्मसिद्धान्तके पठन पाठनका प्रचार बढा है और इनके स्वाध्यायी सज्जन कर्मसिद्धान्तसे अच्छे परिचित देखे जाते हैं। इस सबका श्रेय पं० टोडरमल्लजीको ही प्राप्त है।

आत्मानुशासन टीका—

इसका निर्माण कब किया गया यह कुछ ज्ञात नहीं हो सका।

मोक्षमार्गप्रकाशक—

यह ग्रन्थ बड़ा ही महत्वपूर्ण है जिसकी जोड़का इतना प्रांजल और धार्मिक-विवेचनापूर्ण दूसरा हिन्दी गद्य ग्रन्थ अभी तक देखनेमें नहीं आया। इसमें पदार्थका विवेचन बहुतही सरल शब्दोंमें किया गया है। और जीवोंके मिथ्यात्वको छुड़ानेका पूरा प्रयत्न किया गया है, यह मल्लजीकी स्वतन्त्र रचना है। यह ग्रन्थभी, जिसकी श्लोकसंख्या बीसहजारके करीब है; सं० १८२१ से पहले ही रचा गया है; क्योंकि ब्रह्मचारी रायमल्लजीने इन्द्रध्वज पूजाकी पत्रिकामें इसके रचे जानेका उल्लेख किया है। मालूम होता है कि यह ग्रन्थ बादको पूरा नहीं हो सका।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय टीका—

यह उनकी अन्तिम कृति जान पड़ती है। यही कारण है कि यह अपूर्ण रह गयी। यदि आयुवश वे जीवित रहते तो वे अवश्य पूरी करते। बादको यह टीका श्रीरतनचन्दजी दीवानकी प्रेरणासे पण्डित दौलतरामजीने सं० १८२७ में पूरी की है; परन्तु उनसे उसका वैसा निर्वाह नहीं हो सका है, फिर भी उसका अधूरापन तो दूर हो ही गया है।

उक्त कृतियोंका रचनाकाल सं० १८११ से १८१८ तक तो निश्चित ही है। फिर इसके बाद और कितने समय तक चला, यद्यपि यह अनिश्चित है, परन्तु फिर भी सं० १८२४ के पूर्व तक उसकी सीमा जरूर है। पं० टोडरमल्लजीकी ये सब रचनाएं जयपुर नरेश माधवसिंहजी प्रथमके राज्यकालमें रची गई हैं। जयपुर नरेश माधवसिंह प्रथमका राज्य वि० सं० १८११ से १८२४ तक निश्चित माना जाता है*। पं दौलतरामजीने जब सं० १८२७ में पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी अधूरी टीकाको पूर्ण किया तब जयपुरमें राजा पृथ्वीसिंहका राज्य था। अतएव संवत् १८२७ से पहले ही माधवसिंहका राज्य करना सुनिश्चित है।

पंडितजीकी मृत्यु और समय—

पंडित जीकी मृत्यु कब और कैसे हुई यह विषय अर्सेसे एक पहेलीसा बना हुआ है। जैन समाजमें इस सम्बन्धमें कई प्रकारकी किंवदन्तियां प्रचलित हैं।

* देखो, 'भारतके प्राचीन राजवंश' भाग ३ पृ० २३६, २४०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु उनमें हाथीके पैरतले दबवाकर मरवानेकी घटनाका बहुत प्रचार है। यह घटना कोरी कल्पना ही नहीं है, किन्तु उसमें उनकी मृत्युका रहस्य निहित है। पहिले मेरी यह धारणा थी कि इस प्रकारकी अकल्पित घटना पं०टोडरमल्लजी जैसे महान् विद्वानके साथ नहीं घट सकती; परन्तु बहुत कुछ अन्वेषण तथा उसपर काफी विचार करनेके बाद अब मेरी यह दृढ़ धारणा होगई है कि उपरोक्त किम्बदन्ती असत्य नहीं है किन्तु वह किसी तथ्यको लिये हुये अवश्य है। जब हम उसपर गहरा विचार करते हैं और पं० जीके व्यक्तित्व तथा उनकी सीधी सादी भद्र परिणतिकी ओरभी ध्यान देते हैं; जो स्वप्नमें भी कभी पीड़ा देनेका भाव नहीं रखते थे, तब उनके प्रति विद्वेषवश अथवा उनके प्रभाव तथा व्यक्तित्वके साथ घोर ईर्षा रखनेवाले जैनेतर व्यक्तिके द्वारा साम्प्रदायिक व्यामोहवश सुझाये गये अकल्पित एवं अशक्य अपराधके द्वारा अन्धश्रद्धावश बिना किसी निर्णयके यदि राजाका कोप सहसा उमड़ पड़ा हो, और राजाने पंडितजीके लिये बिना किसी अपराधके भी उक्त प्रकारसे 'मृत्युदण्ड' का फतवा दे दिया हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है जब हम उस समयकी भारतीय रियासतीय परिस्थितियों पर ध्यान देते हैं; और उनके अन्धश्रद्धावश किये गये अन्याय-अत्याचारोंकी झांकीका अवलोकन करते हैं, तब उसमें आश्चर्यको कोई स्थान नहीं रहता। यही कारण है कि उस समयके विद्वानोंने राज्यके भयसे उनकी मृत्यु आदिके सम्बन्धमें स्पष्ट कुछभी नहीं लिखा; क्योंकि रियासतोंमें खासतौर पर मृत्युभय और धनादिके अपहरणकी सहस्रों घटनायें घटती रहती हैं, और उनसे प्रजामें घोर आतंक बना रहता है; किन्तु आज परिस्थितियां बदल चुकी हैं और अब प्राय: इस प्रकारकी घटनायें कहीं सुननेमें नहीं आती।

अब प्रश्न केवल समयका रह जाता है कि उक्त घटना कब घटी? यद्यपि इस सम्बन्धमें इतनाही कहा जा सकता है कि सं० १८२१ और सं० १८७४ के मध्य में माधवसिंहजी प्रथमके राज्य कालमें किसी समय घटी है, परन्तु उसकी अधिकांश सम्भावना सं० १८२४ में जान पड़ती है। चूंकि पं० देवीदास जीकी जयपुरसे बसवा जाने, और उससे वापिस लौटनेपर पुन: पं० टोडरमल्लजी नहीं मिले, तब उन्होंने उनके लघुपुत्र पण्डित गुमानीरामजी के पासही तत्त्वचर्चा सुनकर कुछज्ञान प्राप्त किया, यह उल्लेख सं० १८२४ के बादका है। और उसके अनन्तर देवीदास जी जयपुरमें सं० १८३८ तक रहे हैं।

वीर सेवामन्दिर
सरसावा

६-१-१९४८

समन्तभद्र-भाष्य

समन्तभद्रके भाष्यकी समस्या विचारकके लिये एक खास विचारणीय वस्तु बनी हुई है। अभीतक मैं स्वयं इस निष्कर्षपर पहुंचा था कि समन्तभद्र के द्वारा रचागया जो भाष्य माना जाता है और जिसे तत्त्वार्थभाष्य अथवा गन्धहस्ति महाभाष्य कहा जाता है वह एक कल्पनामात्र है और उस कल्पना के जनक अभयचन्द्र सूरि हैं। परन्तु मैंने अपनी खोज को बन्द नहीं किया और जब समन्तभद्र तथा उनके ग्रंथों के उल्लेखको लिये हुये कोई नया ग्रन्थ दृष्टि में आता है तोमैं बड़ी उत्सुकतासे उसे देखनेमें प्रवृत्त होता हूं। और यह जाननेको उत्सुक रहता हूं कि इसमें समन्तभद्रके तथाकथित भाष्यका उल्लेख तो नहीं है? चुनांचे अभी हालमें 'लक्षणावली' में जिन ग्रन्थोंके लक्षणोंका संकलन नहीं हुआ था, उनके लक्षण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संकलन करनेकेलिये भास्करनन्दिकी हालमें प्रकाशित होकर प्राप्त तत्त्वार्थवृत्ति हाथमें आई। इस ग्रन्थकी प्रस्तावनामें पं० शान्तिराजजी शास्त्रीने समन्तभद्रके भाष्यके सम्बन्धमें विचार किया है। उन्होंने समन्तभद्र-भाष्यके उल्लेखोंमें एक उल्लेख विद्वानोंके लिये खास तौरसे विचारने योग्य और प्रसिद्ध उल्लेखोंसे प्राचीन एवं नया उपस्थित किया है। वह उल्लेख निम्न प्रकार है:—

अभिमतमागिरे 'तत्त्वा-
र्थभाष्यमं तर्कशास्त्रमं' बरेदुवचो-।
विभवदिनिलेगेसेद 'समं-
तभद्रदेवर' समानरंबरुमोलरे ॥ ५ ॥

यह उल्लेख चामुण्डरायके प्रसिद्ध त्रिषष्टि लक्षण महापुराणका है जो कनड़ी भाषामें रचा गया है और जिसे उन्होंने शक सं० ६०० – वि० सं० १०३५ में समाप्त किया है। चामुण्डाराय गंगनरेश राचमल्लके प्रख्यात मंत्री थे। राचमल्लका राज्यकाल बि० सं० १०३१ से १०४१ तक है। कनड़ी भाषाके प्रसिद्ध कवि रन्नने अपने वि० सं० १०५० में रचे गये 'पुराणतिलक' में चामुण्डराय की विशेष कृपाका उल्लेख किया है१। यही चामुण्डराय प्रसिद्ध गोम्मटेश्वरकी मूर्तिके निर्माता और नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीद्वारा अतिशय प्रशस्य हुए हैं। मतलब यह कि चामुण्डरायका उक्त उल्लेख बहुत कुछ प्रामाणिक और असन्दिग्ध है। उसमें दो बातोंका स्पष्ट निर्देश है एक तो यह कि समन्तभद्रदेवने तत्त्वार्थभाष्य रचा हैं और दूसरी यह कि वह तर्कशास्त्र ग्रन्थ है। नहीं कहा जा सकता कि चामुण्डरायने समन्तभद्रके भाष्यका उल्लेख किस आधारसे किया? क्या उन्हें उक्त ग्रन्थ प्राप्त था अथवा अनुश्रुति मात्र थी? इस सम्बन्धमें समन्तभद्रभाष्य-प्रेमी विद्वानोंको अवश्य विचार करना चाहिये और उसका अनुसन्धान करते रहना चाहिये।

उक्त उल्लेखमें एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि समन्तभद्र वादिराजसूरिसे पूर्व भी 'देव' उपपद-के साथ स्मृत होते थे और 'समन्तभद्रदेव' इस नामसे भी विद्वान उनका गुण कीर्तन करते थे।

१०जनवरी, १६४८ दरबारीलाल कोठिया

१ देखो, प्रेमीजीकृत जैन साहित्य और इतिहास।

समयसार की महानता

(प्रवक्ता— पूज्य श्रीकानजी)

[पाठकगण, श्रीकानजी स्वामीसे अपरिचित नहीं हैं। वे वर्तमान युगके उन सन्तोंमें हैं जो जडवादके जालसे व्याप्त इस विश्वमें आध्यात्मका उद्दीप्त दीपक जलाये हुए हैं और जिसके प्रकाशको न केवल आस-पास ही, अपितु भारतके सुदूरवर्ती अनेक कोनोंमें भी, अपने विद्वत्ता और मार्मिकतासे भरे हुए प्रवचनोंद्वारा प्रसृत कर रहे हैं। यों तो आप और आपका विवेकी संघ दोनों 'समयसार' के महत्व और उसकी अगाधता-को खूब अनुभव करते हैं तथा सदैव उसे प्रकट भी करते रहते हैं। परन्तु अभी हालमें श्रीकानजी स्वामीका 'आत्म-धर्म' में वह प्रवचन प्रकट हुआ है जिसे उन्हों-ने गत श्रुतपञ्चमीके अवसरपर किया था। इस प्रवचनमें श्रीकानजी महाराजने समयसार पर जो उद्गार प्रकट किये हैं उनसे समयसारकी महानता और अगाधताका जैसा कुछ परिचय मिलता है वह देखते ही बनता है। हम पाठकोंके लिये उनके इस प्रवचनके कुछ अंशको यहां दे रहे हैं।]

—स० सम्पादक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आज यह समयसार आठवीं बार पढ़ा जा रहा है -सभामें प्रवचनरूपसे आठवीं बार पढ़ा जा रहा है फिर भी यह कुछ अधिक नहीं है। इस समयसारमें ऐसा गूढ़-रहस्य भरा हुआ है कि यदि इसके भावोंको जीवनभर मनन किया जाय तो भी इसके भाव पूरे प्राप्त नहीं किये जा सकते। केवलज्ञान होनेपर ही समयसारके भाव पूरे हो सकते हैं। समयसारके भावका आशय समझकर एकावतारी हुआ जा सकता है। समयसारमें ऐसे महान् भाव भरे हुए हैं कि श्रुतकेवली भी अपनी वाणीके द्वारा विवेचन करके उसके सम्पूर्ण सारको नहीं कह सकते। यह ग्रन्थाधिराज है, इसमें ब्रह्माण्डके भाव भरे हुए हैं। इसके अन्तरङ्गके आशयको समझकर शुद्धात्माकी श्रद्धा ज्ञान-स्थिरताके द्वारा अपने समयसारकी पूर्णता की जा सकती है; भले ही वर्तमानमें विशेष पहलुओंसे जाननेका विच्छेद हो; परन्तु यथार्थ तत्त्वज्ञानको समझने योग्य ज्ञानका विच्छेद नहीं है। तत्त्वको समझनेकी शक्ति अभी भी है जो यथार्थ तत्त्वज्ञान करता है उसे एकावतारीपनका निःसन्देह निर्णय हो सकता है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यने महान् उपकार किये हैं। यह समयसार-शास्त्र इस कालमें भव्यजीवोंका महान् आधार है। लोग क्रियाकाण्ड और व्यवहारके पक्षपाती हैं, तत्त्वका वियोग हो रहा है, और निश्चय स्वभावका अन्तर्धान हो गया है-वह ढक गया है; तब यह समयसार शुद्धात्मतत्त्वको बतलाकर तत्त्वके वियोगको भुला देता है और निश्चय स्वभावको प्रकट करता है।

समयसारका प्रारम्भ करते हुए श्री कुन्दकुन्दाचार्य-देवने प्रारम्भिक मङ्गलाचरणमें कहा है कि- 'वंदित्तु सव्वसिद्धे' अनन्त सिद्ध भगवन्तोंको वंदना करता हूं, सब कुछ भूलकर अपने आत्मामें सिद्धत्वको स्थापित करता हूं। इस प्रकार सिद्धत्वका ही आदर किया है। जो जिसकी बंदना करता है उसे अपनी दृष्टिमें आदर हुए विना यथार्थ वन्दना नहीं हो सकती।

अनन्त सिद्ध हो चुके हैं, पहिले सिद्ध दशा नहीं थी और फिर उसे प्रगट किया, द्रव्य ज्योंका त्यों स्थित रहा, पर्याय बदल गया, इस प्रकार सब लक्ष्यमें लेकर अपने आत्मामें सिद्धत्वकी स्थापना की है, अपनी सिद्ध दशाकी ओर प्रस्थान किया है। मैं अपने आत्मामें इस समय प्रस्थान-चिह्न स्थापित करता हूं और मानता हूं कि मैं सिद्ध हूं अल्पकालमें सिद्ध होने वाला हूं; यह प्रस्थान-चिह्न अब नहीं उठ सकता; मैं सिद्ध हूं, ऐसी श्रद्धाके जम जानेपर आत्मामें से विकारका नाश होकर सिद्ध भाव ही रह जाता है। अब सिद्धके अतिरिक्त अन्य भावोंका आदर नहीं है यह सुनकर हां करनेवाला भी सिद्ध है। मैं सिद्ध हूं और तू भी सिद्ध है-इस प्रकार आचार्यदेवने सिद्धत्व से ही मांगलिक प्रारम्भ किया है।

तत्व-चर्चा—

शंका-समाधान

[कितने ही पाठकों व इतर सज्जनोंको अनुसन्धानादि-विषयक शंकाएँ पैदा हुआ करती हैं और वे कभी कभी उनके विषयमें इधर उधर पूछा करते हैं। कितने ही को उत्तर नहीं मिलता और कितनोंको संयोगाभावके कारण पूछनेको अवसर ही नहीं मिलता, जिससे प्रायः उनकी शंकाएँ हृदयकी हृदयमें ही विलीन हो जाया करती हैं और इस तरह उनकी जिज्ञासा अतृप्त ही बनी रहती है। ऐसे सब सज्जनोंकी सुविधा और लाभको दृष्टिमें रखकर 'अनेकान्त' में इस किरणसे एक 'शंका समाधान' स्तम्भ भी खोला जा रहा है जिसके नीचे यथासाध्य ऐसी सब शंकाओंका समाधान रहा करेगा। आशा है इससे सभी पाठक लाभ उठा सकेंगे। —सम्पादक]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१ शंका—कहा जाता है कि विद्यानन्द स्वामीने 'विद्यानन्दमहोदय' नामका एक बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखा है, जिसके उल्लेख उन्होंने स्वयं अपने श्लोकवार्त्तिक, अष्टसहस्री आदि ग्रन्थों में किये हैं। परन्तु उनके बाद होनेवाले माणिक्यनन्दि, वादिराज, प्रभाचन्द्र आदि बड़े बड़े आचार्योंमेंसे किसीने भी अपने ग्रन्थोंमें उसका उल्लेख नहीं किया, इससे क्या वह विद्यानन्दके जीवनकाल तक ही रहा है—उसके बाद नष्ट होगया ?

१ समाधान—नहीं, विद्यानन्दके जीवन-कालके बाद भी उसका अस्तित्व मिलता है। विक्रमकी बारहवीं तेरहवीं शताब्दीके प्रसिद्ध विद्वान् वादी देवसूरिने अपने 'स्याद्वादरत्नाकर' (द्वि० भा० पृ०,३४६) में 'विद्यानन्दमहोदय' ग्रंथकी एक पंक्ति उद्धृत करके नामोल्लेखपूर्वक उसका समालोचन किया है। यथा—

'यत्तु विद्यानन्द······महोदये च "कालान्तराविस्मरणकारणं हि धारणाभिधानं ज्ञानं संस्कारः प्रतीयते" इति वदन् संस्कारधारणयोरैकार्थ्यमचकथत्'।

इससे स्पष्ट जाना जाता है कि 'विद्यानन्दमहोदय' विद्यानन्द स्वामीके जीवनकालसे तीनसौ चारसौ वर्ष बाद तक भी विद्वानोंकी ज्ञानचर्चा और अध्ययनका विषय रहा है। आश्चर्य नहीं कि उसकी सैकड़ोंकापियां न हो पानेसे वह सब विद्वानोंको शायद प्राप्त नहीं हो सका अथवा प्राप्त भी रहा हो तो अष्टसहस्री आदिकी तरह वादिराज आदिने अपने ग्रंथोंमें उसके उद्धरण ग्रहण न किये हों। जो हो, पर उक्त प्रमाणसे निश्चित है कि वह बननेके कईसौ वर्ष बाद तक विद्यमान रहा है। संभव है वह अबभी किसी लायब्रेरी या सरस्वती भंडारमें दीमकोंका भक्ष्य बना पड़ा हो। अन्वेषण करनेपर अकलंक देवके प्रमाणसंग्रह तथा अनन्तवीर्य की सिद्धिविनिश्चयटीकाकी तरह किसी श्वेताम्बर शास्त्र भंडारमें मिल जाय; क्योंकि उनके यहां शास्त्रों की सुरक्षा और सुव्यवस्था यति-मुनियोंके हाथोंमें रही है और अबभी कितने ही स्थानों पर चलती है अभी हमें मुनि पुण्यविजयजीके अनुग्रहसे वि० सं० १४५४ की लिखी अर्थात् साढ़े पांचसौ वर्ष पुरानी अधिक शुद्ध अष्टसहस्रीकी प्रति प्राप्त हुई है, जो मुद्रित अष्टसहस्रीमें सैंकड़ों सूक्ष्म तथा स्थूल अशुद्धियों और त्रुटित पाठोंको प्रदर्शित करती है। यह भी प्राचीन प्रतियोंकी सुरक्षाका एक अच्छा उदाहरण है। इससे 'विद्यानन्दमहोदय' के भी श्वेताम्बर शास्त्र भंडारोंमें मिलनेकी अधिक आशा है, अन्वेषकोंको उसकी खोजका प्रयत्न करते रहना चाहिये।

२ शंका—विद्वानोंसे सुना जाता है। कि बड़े अनन्तवीर्य अर्थात् सिद्धिविनिश्चयटीकाकारने अकलंकदेवके 'प्रमाणसंग्रह' पर 'प्रमाणसंग्रहभाष्य' या 'प्रमाणसंग्रहालंकार' नामका वृहद् टीका-ग्रन्थ लिखा है परन्तु आज वह उपलब्ध नहीं होरहा। क्या उसके अस्तित्व प्रतिपादक कोई उल्लेख हैं जिनसे विद्वानोंकी उक्त अनुश्रुतिको पोषण मिले ?

२ समाधान—हां, प्रमाणसंग्रहभाष्य अथवा प्रमाणसंग्रहालंकारके उल्लेख मिलते हैं। स्वयं सिद्धिविनिश्चयटीकाकारने सिद्धिविनिश्चयटीकामें उसके अनेक जगह उल्लेख किये हैं और उसमें विशेष जानने तथा कथन करनेकी सूचनाएँ की हैं। यथा—

(१) 'इति चर्चितं प्रमाणसंग्रहभाष्ये' –*सि० वि० टी० लि० प० १२।

(२) 'इत्युक्तं प्रमाणसंग्रहालंकारे'—सि० लि० प० १६।

(३) 'शेषमत्र प्रमाणसंग्रहभाष्यात्प्रत्येयम्' –सि० प० ३६२।

(४) 'प्रपंचस्तु नेहोक्तो ग्रंथगौरवात् प्रमाणसंग्रहभाष्याज्ज्ञेयः'—सि० लि० प० ६२१।

(५) 'प्रमाणसंग्रहभाष्ये निरस्तम्'—सि० लि० प० ११०३।

(६) 'दोषो रागादिर्व्याख्यातः प्रमाणसंग्रहभाष्ये'—सि० लि० प० १२२२।

* वीर सेवा मन्दिरमें जो सिद्धिविनिश्चय टीकाकी लिखित प्रति मौजूद है उसके पत्रों की संख्या डालीगई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन असंदिग्ध उल्लेखोंसे 'प्रमाणसंग्रहभाष्य' अथवा 'प्रमाणसंग्रहालंकार' की अस्तित्वविषयका विद्वद्-अनुश्रुतिको जहां पोषण मिलता है वहां उसकी महत्ता, अपूर्वता और बृहत्ता भी प्रकट होती है। ऐसा अपूर्वग्रन्थ मालूम नहीं इस समय मौजूद है अथवा नष्ट होगया है? यदि नष्ट नहीं हुआ और किसी लायब्रेरीमें मौजूद है तो उसका अनुसंधान होना चाहिये। कितने खेदकी बात है कि हमारी लापरवाही से हमारे विशाल साहित्योद्यानमेंसे ऐसे ऐसे सुन्दर और सुगन्धित ग्रन्थ-प्रसून हमारी नजरोंसे ओझल हो गये। यदि हम मालियोंने अपने इस विशाल बागकी जागरूक होकर रक्षा की होती तो वह आज कितना हरा-भरा दिखता और लोग उसे देख देखकर जैन-साहित्यपर कितने मुग्ध और प्रसन्न होते। विद्वानोंको ऐसे ग्रन्थोंका पता लगानेका पूरा उद्योग करना चाहिये।

३ शंका—गोम्मटसार जीवकाण्ड और धवला में जो नित्यनिगोद और इतर निगोदके लक्षण पाये जाते हैं क्या उनसे भी प्राचीन उनके लक्षण मिलते हैं?

३ समाधान—हां, मिलते है। तत्त्वार्थवार्तिकमें अकलङ्कदेवने उनके निम्न प्रकार लक्षण दिये हैं—

'त्रिष्वपि कालेषु त्रसभावयोग्या ये न भवन्ति ते नित्यनिगोताः, त्रसभावमवाप्ता अवाप्स्यन्ति च ये तेऽनित्यनिगोताः।' --त०वा० पृ० १००

अर्थात् जो तीनों कालोंमें भी त्रसभावके योग्य नहीं हैं वे नित्यनिगोत हैं और जो त्रसभावको प्राप्त हुए हैं तथा प्राप्त होंगे वे अनित्यनिगोत हैं।

४ शंका—'संजद' पदकी चर्चाके समय आपने 'संजद पदके सम्बन्धमें अकलङ्कदेवका महत्वपूर्ण अभिमत' लेखमें यह बतलाया था कि अकलङ्कदेवने तत्त्वार्थवार्तिकके इस प्रकरणमें षट्खण्डागमके सूत्रोंका प्राय: अनुवाद दिया है। इसपर कुछ विद्वानोंका कहना था कि अकलङ्कदेवने तत्त्वार्थवार्तिकमें षट्खण्डागमका उपयोग किया ही नहीं। क्या उनका यह कहना ठीक है? यदि है तब आपने तत्त्वार्थवार्त्तिकमें षट्खण्डागमके सूत्रोंका अनुवाद कैसे बतलाया?

४ समाधान—हम आपको ऐसे अनेक प्रमाण नीचे देते हैं जिनसे आप और वे विद्वान् यह माननेको बाध्य होंगे कि अकलङ्कदेवने तत्त्वार्थवार्त्तिकमें षट्खण्डागमका खूब उपयोग किया है, यथा—

(१) 'एवं हि **समयोऽवस्थितः सत्प्ररूपणायां कायानुवादे**-"त्रसा द्वीन्द्रियादारभ्य आ अयोगकेवलिन इति"।' —तत्त्वा० पृ० ८८

यह षट्खण्डागमके निम्न सूत्रका संस्कृतानुवाद है-

"तसकाइया बीइंदिय-प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति"। —षट्ख० १-१-४४

(२) '**आगमे** हि जीवस्थानादिसदादिष्वनुयोगद्वारेणादेशवचने नारकाणामेवादौ सदादिप्ररूपणा कृता।' —तत्त्वा० पृ० ५५

इसमें सत्प्ररूपणाके २५वें सूत्रकी ओर स्पष्ट संकेत है।

(३) 'एवं हि **उक्तमार्षे वर्गणायां** बन्धविधाने नोआगमद्रव्यबन्धविकल्पे सादिवैस्रसिकबन्धनिर्देश: प्रोक्त: विषमरूक्षतायांच बन्ध: समस्निग्धतायां समरूक्षतायां च भेद: इति तदनुसारेण सूत्रमुक्तम्' —तत्त्वा० पृ० २४२

यहां पांचवें वर्गणा खण्डका स्पष्ट उल्लेख है।

(४) 'स्यादेतदेव**मागमः** प्रवृत्त:। पंचेन्द्रिया असंज्ञिपंचेन्द्रियादारभ्य आ अयोगकेवलिन:' पृ० ६३

यह षट्खण्डागमके इस सूत्रका अक्षरश: संस्कृतानुवाद है—

"पंचिंदिया असण्णिपंचिंदिय—प्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति" —१-१-३७।

इन प्रमाणोंसे असंदिग्ध है कि अकलङ्कदेवने तत्त्वार्थवार्त्तिकमें षट्खण्डागमका अनुवादादिरूपसे उपयोग किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५-शंका—मनुष्यगतिमें आठ वर्षकी अवस्थामें भी सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाता है, ऐसा कहा जाता है, इसमें क्या कोई आगम प्रमाण है ?

५—समाधान—हां, उसमें आगम प्रमाण है। तत्त्वार्थवार्त्तिकमें अकलङ्कदेवने लिखा है कि 'पर्याप्तक मनुष्य ही सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं, अपर्याप्तक मनुष्य नहीं और पर्याप्तक मनुष्य आठ वर्षकी अवस्था से ऊपर उसको उत्पन्न करते हैं, इससे कममें नहीं'। यथा—

'मनुष्या उत्पादयन्तः पर्याप्तका उत्पादयन्ति नापर्याप्तकाः। पर्याप्तकाश्चाऽष्टवर्षस्थितेरुपर्युत्पादयन्ति नाधस्तात्'। —पृ० ७१।

६— शंका—दिगम्बर मुनि जब विहार कर रहे हों और रास्तेमें सूर्य अस्त हो जाय तथा आस-पास कोई गांव या शहर भी न हो तो क्या विहार बंद करके वे वहीं ठहर जायेंगे अथवा क्या करेंगे ?

६-समाधान—जहां सूर्य अस्त होजायगा वहीं ठहर जायेंगे उससे आगे नहीं जायेंगे। भले ही वहां गांव या शहर न हो। क्योंकि मुनिराज ईर्यासमिति के पालक होते हैं और सूर्यास्त होनेपर ईर्यासमितिका पालन बन नहीं सकता और इसीलिये सूर्य जहां उदय होता है वहांसे वे तव नगर या गांवके लिये विहार करते हैं, जैसा आचार्य जटासिंहनन्दिने वरांङ्गचरितमें कहा है:—

यस्मिंस्तु देशेऽस्तमुपैति सूर्य—
स्तत्रैव संवासमुखा बभूवुः।
यत्रोदयं प्राप सहस्ररश्मि--
र्यातास्ततोऽथा पुरि वाऽप्रसंगाः॥
—३०-४७

इसी बातको मुनियोंके आचार-प्रतिपादक प्रधान ग्रन्थ मूलाचारमें (७८४) निम्न रूपसे बतलाया है—

ते णिम्ममा सरीरे जत्थत्थमिदा वसंति अणिएदा।
सवणा अप्पडिवद्धा विज्जू तह दिट्ठणट्ठा या॥

अर्थात् 'वे साधु शरीरमें निर्मम हुए जहां सूर्य अस्त हो जाता है वहां ठहर जाते हैं कुछ भी अपेक्षा नहीं करते। और वे किसीसे बन्धे हुए नहीं, स्वतन्त्र हैं, बिजलीके समान दृष्टनष्ट हैं, इसलिये अपरिग्रह हैं।

७-शंका--लोग कहते हैं कि दिगम्बरजैन मुनि वर्षावास (चतुर्मास) के अतिरिक्त एक जगह एक दिन रात या ज्यादासे ज्यादा पांच दिन-रात तक ठहर सकते हैं। पीछे वे वहांसे दूसरी जगहको जरूर विहार कर जाते हैं। इसे वे सिद्धान्त और शास्त्रोंका कथन बतलाते हैं। फिर आचार्य शांतिसागरजी महाराज अपने संघ सहित वर्षभर शोलापुर शहरमें क्यों ठहरे ? क्या कोई ऐसा अपवाद है ?

७— समाधान--लोगोंका कहना ठीक है। दिगम्बर जैन मुनि गांवमें एक रात और शहरमें पांच रात तक ठहरते हैं। ऐसा सिद्धान्त है और उसे शास्त्रोंमें बतलाया गया है। मूलाचारमें और जटासिंहनन्दिके वरांगचरितमें यही कहा है। यथा—

गामेयरादिवासी णयरे पंचाहवासिणो धीरा।
सवणा फासुविहारी विवित्तएगंतवासी य॥
—मूला० ७८५

ग्रामैकरात्रं नगरे च पञ्च समूषुरव्यग्रमनःप्रचाराः
न किंचिदप्यप्रतिबाधमाना विहारकाले समिता विजिह्रुः॥ —वरांग० ३०-४५

परन्तु गांव या शहरमें वर्षों रहना मुनियोंकेलिये न उत्सर्ग बतलाया और न अपवाद।

भगवती आराधनामें मुनियोंके एक जगह कितने काल तक ठहरने और बादमें न ठहरनेके सम्बन्धमें विस्तृत विचार किया गया है। लेकिन वहां भी एक जगह वर्षों ठहरना मुनियोंके लिये विहित नहीं बतलाया। नौवें और दशवें स्थितिकल्पोंकी विवेचना करते हुए विजयोदया और मूलाराधना दोनों टीकाओं में सिर्फ इतना ही प्रतिपादन किया है कि नौवें कल्पमें मुनि एक एक ऋतुमें एक एक मास एक जगह ठहरते हैं। यदि ज्यादा दिन ठहरें तो 'उद्गमादि दोषोंका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिहार नहीं होता, वसतिकापर प्रेम उत्पन्न होता है, सुखमें लम्पटपना उत्पन्न होता है, आलस्य आता है, सुकुमारताकी भावना उत्पन्न होती है, जिन श्रावकोंके यहां आहार पूर्वमें हुआ था वहां ही पुनरपि आहार लेना पड़ता है, ऐसे दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये मुनि एक ही स्थानमें चिरकाल तक रहते नहीं हैं।' दशवें स्थितिकल्पमें चतुर्मासमें एक ही स्थानपर रहने का विधान किया है और १२० दिन एक स्थानपर रह सकनेका उत्सर्ग नियम बतलाया है। कमती बढ़ती दिन ठहरनेका अपवाद नियम भी इसप्रकार बतलाया है कि श्रुतग्रहण, (अभ्यास) वृष्टिकी बहुलता शक्तिका अभाव, वैयावृत्य करना आदि प्रयोजन हों तो ३६ दिन और अधिक ठहर सकते हैं अर्थात् आषाढ़शुक्ला दशमीसे प्रारम्भ कर कार्त्तिक पौर्णमासीके आगे तीस दिन तक एक स्थानमें और अधिक रह सकते हैं। कम दिन ठहरनेके कारण ये बतलाये हैं कि मरी रोग, दुर्भिक्ष. ग्राम अथवा देशके लोगोंको राज्य-क्रान्ति आदिसे अपना स्थान छोड़कर अन्य ग्रामादिकोंमें जाना पड़े, संघके नाशका निमित्त उपस्थित हो जाय आदि, तो मुनि चतुर्मासमें भी अन्य स्थानको विहार कर जाते हैं। विहार न करनेपर रत्नत्रयके नाशकी सम्भावना होती है। इसलिये आषाढ़ पूर्णिमा बीत जानेपर प्रतिपदा आदि तिथियोंमें दूसरे स्थानको जा सकते हैं और इसतरह एकसौबीस दिनोंमेंसे बीस दिन कम हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त वर्षों ठहरनेका वहां कोई अपवाद नहीं है। यथा—

"ऋतुषु षट्सु एकैकमेव मासमेकत्र वसतिरन्यदा विहरति इत्ययं नवमः स्थितिकल्पः। एकत्र चिरकालावस्थाने नित्यमुद्गमदोषं च न परिहर्तुं क्षमः। क्षेत्रप्रतिबद्धता, सातगुरुता, अलसता, सौकुमार्यभावना, ज्ञातभिक्षाग्राहिता च दोषाः। पज्जो समणकप्पो नाम दशमः। वर्षाकालस्य चतुर्षु मासेषु एकत्रैवावस्थानं भ्रमणत्यागः। स्थावरजङ्गमजीवाकुलो हि तदा क्षितिः तदा भ्रमणे महानसंयमः, वृष्ट्या शीतवातपातेन वात्मविराधना। पतेद् वाप्यादिषु स्थाणुकण्टकादिभिर्वा प्रच्छन्नैर्जलेन कर्दमेन बाध्यत इति विंशत्यधिकं दिवसशतं एकत्रावस्थानमित्ययमुत्सर्गः। कारणापेक्षया तु हीनाधिकं वासस्थानं, संयतानां आषाढशुद्धदशम्यां स्थितानां उपरिष्टाच्च कार्तिकपौर्णमास्या त्रिंशद्दिवसावस्थानम्। वृष्टिबहुलता, श्रुतग्रहणं, शक्त्यभाववैयावृत्यकरणं प्रयोजनमुद्दिश्य अवस्थानमेकत्रेति उत्कृष्ट---कालः। मार्यां, दुर्भिक्षे, ग्रामजनपदचलने वा गच्छनाशनिमित्ते समुपस्थिते देशान्तरं याति। अवस्थाने सति रत्नत्रयविराधना भविष्यतीति। पौर्णमास्यामाषाढ्यामतिक्रान्तायां प्रतिपदादिषु दिनेषु याति। यावच्च त्यक्ता विंशति-दिवसा एतदपेक्ष्य हीनता कालस्य एष दशमः स्थिति--कल्पः।" —विजयोदया टी० पृ० ६१६।

आचार्य शान्तिसागर महाराज सङ्घ सहित वर्षभर शोलापुर शहरमें किस दृष्टि अथवा किस शास्त्रके आधारसे ठहरे रहे। इस सम्बन्धमें सङ्घको अपनी दृष्टि स्पष्ट कर देना चाहिए, जिससे भविष्यमें दिगम्बर मुनिराजोंमें शिथिलाचारिता और न बढ़ जाय।

—दरबारीलाल कोठिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विविध

१-केन्द्रीय शिक्षा-संस्थाका उद्घाटन और लेडी माउन्टबेटनका भाषण—

गत १६ दिसम्बरको दिल्लीमें एक केन्द्रीय शिक्षा-संस्थाकी स्थापना होकर उसका उद्घाटन–समारोह मनाया गया था। उद्घाटन महामाननीया लेडी मांउ–टबेटनने किया था। इस अवसरपर भाषण करते हुए आपने राष्ट्रीय अध्यापकोंकी योग्यता और चरित्र निर्माणपर महत्त्वपूर्ण जोर दिया। आपने कहा:—

'इस केन्द्रीय शिक्षा–संस्थाका द्वार खोलते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता होरही है। यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि भारतके अध्यापकोंको योग्यतापर ही भावी सभ्यताके प्रति भारतका कार्य–भार अधिकांशत: निर्भर करेगा। पिछले तीन महीनोंमें हमारा ध्यान अधिकतर मनुष्योंका जीवन बचानेके कार्यमें लगारहा है, किन्तु यह शिक्षा–संस्था खोलकर सरकारने स्पष्ट कर दिया है कि कठिन समस्याओंमें फंस जानेके कारण वह दीर्घ-कालीन रचनात्मक कार्य–क्रमके प्रति उदा–सीन नहीं है'।

शिक्षामंत्री महोदयने अपने भाषणमें बताया है। कि यदि ११ वर्ष तककी अवस्था वाले प्राय: ३ करोड़ बालकोंकी आरम्भिक शिक्षा–व्यवस्था करनी है तो इसकेलिये ही भारी संख्यामें अध्यापकोंकी आवश्यकता पड़ेगी। और हर शिक्षित व्यक्तिसे इस कार्यमें सहायता लेनी होगी। शिक्षाके प्रसार–कार्यमें, क्या मैं शैक्षिक फिल्मों तथा बेतारके माध्यमोंकी शिक्षाप्रद उपयोगिता का भी सुझाव रख सकती हूं मैं समझती हूं इस कार्यके लिये उक्त दोनों ही साधनोंके विस्तारके लिये भारतमें काफी बड़ा क्षेत्र है।

हम सभी जान चुके हैं कि केवल पुस्तकीय योग्यता तथा विशिष्ट कुशलता पर्याप्त नहीं है और चरित्र–बलका उपार्जन भी परमावश्यक है। अध्यापक गण अपने छात्रोंको, केवल अपनी योग्यतासे ही नहीं, बल्कि अपने चरित्रसे भी प्रभावित कर सकता है। इसकी ओर भी पूरा ध्यान दिया जाना चाहिये। अच्छे नागरिक तैयार करनेके लिये जो लड़ाई हमें लड़नी है उसमें इस बातका विशेष महत्व होगा।

२–उद्योगसम्मेलनमें पं० नेहरूका अभि-भाषण—

अभी हालमें १८ दिसम्बर १९४७ को उद्योग मंत्री डा० मुखर्जीद्वारा एक उद्योगसम्मेलन बुलाया गया था उसमें भारतके प्रधान–मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरूने औद्योगिक शान्तिकी आवश्यकता व उत्पादनमें वृद्धि करनेके महत्त्व पर जोर देते हुए एक विस्तृत अभि–भाषण किया था। आपने कहा:—

'मैत्री–पूर्ण सहयोगमें हड़तालों तथा तालेबंदियों को बन्द करके कुछ समय तक औद्योगिक शान्ति कायम रखना चाहिये। मौजूदा कितने ही आधारभूत उद्योगोंका राष्ट्रीयकरण होना चाहिये। परन्तु समस्या का अधिकतम हल यह हो सकता है कि सरकारको नये उद्योगोंकी ओर अधिक ध्यान देना चाहिये और उन्हींका अधिक मात्रामें नियंत्रण होना चाहिये। यह सब मैं इसलिये कहरहा हूं कि मैं वैज्ञानिक ढंगसे सोच विचार करनेका आदी रहा हूं, मैं स्थिर रहनेकी अपेक्षा आगे बढ़नेकी बात सोचता हूं। आज कल व्यवसा–योंके सम्बन्धमें विचार करते समय लोग पूंजीवा–दियों, समाजवादियों अथवा कम्यूनिष्टोंकी बात सोचते हैं। किन्तु ये बातें वर्तमान स्थिति पर कायम रहनेकी हैं, आगे बढ़नेकी नहीं। यह विचारधारा गये–बीते युगकी हैं। और इसे हमें त्याग देना चाहिये। कुछ प्रगति शील दृष्टिको–ण रखने पर हम साफ देखते हैं कि यह एक महत्त्वपूर्ण संक्रान्तिकाल है जिसमें शक्ति के नये स्रोतोंका अनुसंधान किया जा रहा है। यह औद्योगिक क्रान्ति या वैद्युतिक क्रान्ति है। किन्तु महत्त्वमें इससेभी अधिक व्यापक है। इसमें दस पंद्रह या बीस साल लग जायेंगे और आज का सभी कुछ पुराना पड़ जायगा। सम्भव है आज आप जिस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उद्योगको प्राप्त करनेकी चेष्टामें हों, कल उसका कोई महत्त्व ही न रहजाय। यदि आप भविष्यके खयालसे देखेंतो वर्तमानके कितने ही संघर्ष व्यर्थ जान पड़ने लगेंगे या उनका स्वरूप बदल जायेगा और तब आप अपनेको पुराने विचारोंकी गुलामीसे मुक्त पाने लगेंगे

जहांतक मेरा ताल्लुक है, मैं देशकी बड़ी योजनाओंको और किसी भी चीजसे ज्यादा महत्व देता हूं, मेरा विचार है कि देशमें इन्हींसे नयी सम्पत्ति प्राप्त होगी। जब कभी मैं भारतका कोई मानचित्र देखता हूं तो हिमालय पर्वत-श्रेणीपर मेरी दृष्टि पड़ती है और मैं उस अनन्तशक्तिकी बात सोचता हूं जो उस श्रेणीमें बेकार छिपी पड़ी है, जिसे काममें लायाजा सकता है और जिसका यदि तेजीसे विकास किया जासके तो जो सम्पूर्ण भारत को ही बदल सकती है यह शक्तिका आश्चर्य-जनक और सम्भवत: संसारमें सबसे महान् स्रोत है। इसी लिये मैं महान् नदी घाटी योजनाओं, बांधों, विशाल जलकुण्डों तथा जलविद्युत-केन्द्रोंको अधिक महत्व देता हूं। ये सब आपको आगे ले जायेंगे। पर शक्ति उत्पन्न करनेसे पहले हमें उसका नियंत्रण और उपयोग भी तो जानना चाहिये।

मुझे आशा है कि इस सम्मेलनमें कमसे कम यह ठोस परिणाम तो अवश्य निकलेगा कि हम लोग मैत्रीपूर्ण ढंगसे काम आरम्भ करके एक अवधिके लिये औद्योगिक शान्ति बनाये रखनेका फैसला कर लेगें और एक ऐसा ढंग निकाल लेंगे, जिससे प्रत्येक व्यक्ति के प्रति न्याय का व्यवहार होसके। इस बीचमें हम शान्तिपूर्वक बैठकर व्यापक नीतियोंके सम्बन्धमें सोच बिचार कर सकेंगे।

३ सरकारी कागजातोंमे 'श्री' या 'श्रीमान' शब्दोंका प्रयोग—

पंजाबकी सरकारने आदेश जारी किये हैं कि अब से आगे समस्त सरकारी कागजात और फाइलोंमें 'मिस्टर' और 'एसकायर' इन अंग्रेजी शब्दोंके स्थान में 'श्री' या 'श्रीमान्' शब्दों का प्रयोग किया जाय।

४-हमारा पड़ोसी देश वर्मा स्वतंत्र और भारतद्वारा अपूर्व स्वागत—

४ जनवरी १६४८ को वर्मा कितने ही वर्षोंकी ब्रिटिश पराधीनताके जुएसे उन्मुक्त होकर सर्वतंत्र स्वतंत्र होगया। यह स्मरणीय रहे कि वर्माको यह स्वतंत्रता भारतकी तरह बिना रक्तपात किये ही प्राप्त होगई है। भारतद्वारा उसकी इस स्वतंत्रताका अपूर्व स्वागत किया गया और भारतवर्षकी राजधानी देहलीमें विभिन्न स्थानोंपर इस स्वाधीनता दिवसके उपलक्षमें अनेक समारोहोंका आयोजन किया गया। इस अवसरपर भारतवर्षके गवर्नर-जनरल लार्ड माउण्ट बेटन, भारतके प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू, उप-प्रधानमंत्री सरदार पटेल, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद तथा मंत्रिमंडलके अन्य सदस्यों— जैसे सरदार बलदेवसिंह, डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, डा० बी० आर० अम्बेदकर, राजकुमारी अमृतकौर, श्रीजगजीवनराम, डा० जानमथाई, श्री एन० गोपाल स्वामी अय्यंगर, डा० रीफ, बर्मास्थित हाईकमिश्नर, प्रोफेसर राधाकृष्णन्, सर सी० बी० रमन, डा० कालीदास नाग, और प्रोफेसर बी० एम० बरुआ— ने सन्देश एवं भाषण दिये **पण्डित नेहरू** ने बर्माकी स्वतंत्रता को एशिया विशेष कर भारतके लिये बड़े महत्त्वकी घटना बतलाते हुए कहा— 'भारत व बर्माका परस्पर इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है कि यदि एक देशमें कुछ होता है तो दूसरे पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। मुझे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हैं कि भविष्यमें हमारा सम्बन्ध और भी अधिक घनिष्ठ होगा। यह सिर्फ हमारी एक जैसी भावनाका ही नहीं, बल्कि विश्व और एशियाकी घटनाओंका भी तकाजा है। शीघ्र ही वह समय आने वाला है जब अन्य देशोंके साथ मिलकर हम सहयोगकी एक व्यवस्थाका निर्माण कर सकेंगे'।

उप-प्रधानमंत्री **सरदार पटेल** ने अपने सन्देश में कहा — 'हम जानते हैं और अनुभव करते हैं कि

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

भारतकी स्वाधीनता अन्य उन देशोंकी स्वाधीनताकी भूमिकामात्र है, जो अभी पराधीनतामें पड़े हुए हैं। इतिहासमें भारतके बर्मासे निकटतम सम्बन्ध रहे हैं। लगभग एक शताब्दी तक दोनों ही देश विदेशी बेड़ियोंमें जकड़े रहे हैं। बर्माके आर्थिक जीवनमें भारतीयोंने जो हिस्सा लिया है वह कुछ थोड़ा नहीं है। हम सदासे बर्माके स्वाधीनता–संग्रामके प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते रहे हैं। जैसे-जैसे वर्ष बीतते जायेंगे वैसे-वैसे स्वाधीनतामें साथीपनकी भावनाका विकास होता जायगा — इसी तरह जिस तरह कि पराधीनताकी बेड़ियोंमें जकड़े रहने पर भी इनके दृष्टिकोणमें साम्य था। हमारी कामना है कि 'बर्मा पुनर्निर्माण तथा पुनस्संस्थापनके कार्यमें प्रगति करे'।

डा० राजेन्द्रप्रसाद ने जिन्होंने रंगूनके स्वाधीनता समारोहमें बर्मा जाकर भारतका प्रतिनिधित्व किया, हिन्दीमें दिये हुए अपने सन्देशमें बर्मा राष्ट्रको भारतीय राष्ट्रीयकांग्रेसकी तरफसे, बिहारकी तरफसे जहां बुद्धको बोधिसत्त्वका ज्ञानका प्रकाश मिला था, सम्पूर्ण भारतकी तरफसे, विधानपरिषद की तरफसे और स्वयं अपनी तरफसे बधाई दी।

लार्ड माउण्ट बैटनने बर्माके प्रति भारतकी सद्भावना प्रकट करते हुए अपने महत्वके भाषणमें कहा— आज बर्माका स्वाधीनता दिवस है। मुझे प्रसन्नता है कि हमारे स्वाधीनता दिवसके कुछ समय बाद ही यह मनाया जारहा है। गत चार वर्षोंसे बर्माके मामलोंमें मैं घनिष्ठतासे निरन्तर रुचि लेता रहा हूं और इस प्रकार वर्मा देश और वर्मी लोगोंके लिये मेरे हृदय में वास्तविक स्नेह उत्पन्न हो गया है। दक्षिण पूर्वी एशिया कमानके स्थापित होतेही बर्मा क्षेत्रके शासन का भार मुझे सौंप दिया गया था। ज्यों ज्यों जापानियोंको हम पीछे हटाते थे त्यों त्यों यह क्षेत्र बढ़ता जाता था। वर्माको जापानसे मुक्त करानेके समय तक और इसके कुछ महीने बाद तक मैं इस प्रकारसे बर्मा का सैन्य गवर्नर था।

इस अवसरपर मैं स्वर्गीय जनरल आंगसानके प्रति श्रद्धांजलि प्रकट करता हूं। वे देशभक्त थे और उनकी यह प्रबल अभिलाषा थी कि उनका देश सदा स्वतंत्र रहे और यही कारण था कि उन्होंने अपने आपको और अपनी वर्मी देशभक्त सेनाको जापानके विरुद्ध लड़नेके लिये मुझे सौंप दिया था। उन्होंने और उनकी सेनाने जो हमारी सेनाको सहायता दी वह बहुत सराहनीय थी। वर्मा मुक्त हो जानेके बाद उन्होंने उच्चकोटिकी राजनीतिका परिचय दिया। रंगून और कैन्डी में मेरी उनसे कई बार मुलाकात हुई। मुझे विश्वास होगया था। कि वे अवश्य ही देशके महान नेता बनेंगे। मुझे आशा थी कि कितने ही वर्षों तक वर्माका भाग्य-निर्माण करनेके लिये वे चिरकाल तक जीवित रहेंगे। उनकी भीषण हत्यासे हृदय-विदारक क्षति पहुंची है।

अपनी उपाधिके साथ बर्माका नाम सम्बद्ध करने का मुझे गौरव प्राप्त है। इस देशसे मेरा घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। इसलिये इस दिवसको विशिष्ट रूपसे मनानेके लिये मैं उत्सुक था। मेरी इच्छा थी कि भारत की ओरसे वर्माको कोई उपहार दिया जाय।

कलकत्ताके अजायबघरमें वर्माका एक राजसिंहासन रखा हुआ है। मांडलेमें लुटदाभवनमें जब वर्माके नरेश थीवा गयेथे वे इसपर बैठे थे। यह उच्च सिंहासन सागौन लकड़ीका बना है और इसमें सोनेका प्रचुरतासे काम किया हुआ है। और नरेश थीवाके उस प्रसिद्ध सिंहासनका यह प्रतिरूप है। जब मैं हालही में लन्दन गया था तो मैंने सम्राटसे इस सम्बन्धमें परामर्श किया भारत सरकारके इस प्रस्तावको उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे मान लिया कि बर्माकी स्वाधीनताके अवसरपर यह सिंहासन उसे भेंट कर दिया जाय। यह सिंहासन इतना भारी है कि यह यहां नहीं लाया जा सकता था। इसे कलकत्तासे ही सीधे रंगून भेज दिया जायेगा। मुझे आशा है कि मार्चमें वर्मा जाने का मैं वर्माके प्रधान-मंत्रीका निमंत्रण स्वीकार कर सकूंगा। यदि ऐसा हुआ तो उस समय मैं स्वयं यह सिंहासन भेंट कर सकूंगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कलकत्ताके सरकारी भवनमें सिंहासनभवनके पश्चिमी भागमें एक छोटासा तख्त पोश है। यह भी नरेश थीवाका है और १८८५ में वर्माके तृतीय युद्धमें मांडलेके राजमहलसे लाया गया था। यही तख्तपोश आपके सामने है जो कलकत्ता-स्थित राजसिंहासनके अतिरिक्त मैं सम्राट और भारतकी सरकार तथा भारत के लोगोंकी ओरसे वर्मा-राजदूत की मार्फत वर्माके लोगोंको भेंट कर रहा हूं। इन दोनों उपहारोंके साथ वर्माके प्रति हम भारतकी सहृदयतापूर्ण शुभ कामनाएँ भेजरहे हैं। हम री यह प्रबल आशा और दृढविश्वास है कि भविष्यमें वर्मा शान्ति और स्वतंत्रताके वातावरणमें फूले फलेगा'।

इसी अवसर पर **पण्डित नेहरू** ने दिल्लीके दरबारभवनमें दिये अपने अन्य भाषणमें वर्मा और भारतके सम्बन्धोंपर प्रकाश डालते हुए कहा—

'मैं भारतकी सरकार और जनताकी तरफसे वर्मी सङ्घके प्रजातन्त्रका अभिवादन करता हूं। केवल वर्मा के लिये ही नहीं, बल्कि भारत तथा सम्पूर्ण एशियाके लिये यह एक महान् तथा पवित्र दिन है। हम भारतमें इससे विशेष रूपसे प्रभावित हुए हैं, क्योंकि न जाने कितने वर्षोंसे हमारा वर्मासे सम्बन्ध रहा है। अतीत कालसे हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें वर्माको स्वर्ग देश कहा जाता रहा है। अतीत कालमें ही किन्तु कुछ समय बाद हमने वर्माको एक संदेश दिया, जो भारतके महान्तम पुत्र गौतम बुद्धका संदेश था। इस संदेशके कारण वर्मा और भारत इन २००० या कुछ अधिक वर्षोंमें एक अटूट बन्धनोंमें बंधे रहे हैं। अन्य बातोंके अतिरिक्त इसमें शान्ति तथा सदाचरणका सन्देश था और आज अन्य किसी भी बातकी अपेक्षा शान्ति और सदाचरणकी आवश्यकता है। और इस लिये आज हम वर्माके प्रजातंत्रके अविर्भावका स्वागत करते हैं'।

अतीतमें हम दोनों ही काफी अरसे तक पृष्ठभूमिमें रहे हैं। हम दोनोंही हर्ष और विषादमें भागीदार रहे हैं और स्वाधीनता प्राप्तिके समय हम दोनोंको अनेक कष्टपूर्ण घड़ियोंसे गुजरना पड़ रहा है। स्वतंत्रताके जन्मसे पूर्व कष्टोंका भोगना अनिवार्य है। फिर भी कष्टोंसे स्वाधीनताका उदय होता है और कल्याण होता है और मुझे आशा है कि भविष्यमें वर्मी जनता के लिये कल्याणकारी और रचनात्मक कार्य होगा। अतीतकी तरह भविष्यमें भी भारतीय राष्ट्र वर्मी राष्ट्रके कंधोंसे कंधा लगा कर खड़ा होगा और. हमें सौभाग्य या दुर्भाग्य जिसका भी सामना करना पड़े हम एक साथ ही उसका सामना करेंगे'।

५-भगवान महावीरके जन्म दिवसकी यू० पी० प्रान्तमें छुट्टीकी सरकारी घोषणा—

पाठकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि संयुक्त-प्रान्तकी लोकप्रिय राष्ट्रीय सरकारने संयुक्तप्रान्तमें भगवान महावीरके, जो अहिंसा और अपरिग्रहके अनन्य उपासक तथा सर्वोच्च प्रचारक थे, जन्मदिनकी एक दिनकी इस वर्षसे छुट्टीकी घोषणा कर दी है। अब समस्त प्रांतमें महावीर-जयन्तीकी सार्वजनिक छुट्टी रहा करेगी। कई वर्षोंसे समाज और जैनसंदेश आदि पत्र इस छुट्टीके लिये लगातार प्रयत्न कर रहे थे। यद्यपि यह छुट्टी बहुत पहले ही घोषित हो जानी चाहिये थी फिर भी सरकारने अपनी लोक-प्रियताका परिचय देकर जो सार्वजनिक छुट्टीकी घोषणा की है उसके लिये हम समाजकी ओरसे उसे धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते। अबतक निम्न स्थानोंमें महावीर जयन्तीकी छुट्टी स्वीकृत हो चुकी है:— यू० पी०, बिहार, सी० पी०, इन्दौर, रीवां, भोपाल, भरतपुर, बिजावर, बरार प्रान्त, अलवर, बून्दी, कोटा, ओरछा, बीकानेर, अजयगढ़, अकलकोट, अलीराजपुर औंध, अवागढ़, अजमतगढ़, अथमौलिक, बड़वानी, बाघाट, बजाना, बालसीनौर, बालसन, वनेड़ा, बांसवाड़ा, बरवाला, भोट, बिलखा, बगसरा, बरम्बा, बोनई खंभात, छगभारवर, चम्बा, छतरपुर, चूड़ा, छोटा उदैपुर, चौमू, चुड़ेरवदान दासपला, दतिया, धार धरमपुर, धौलतपुर, ध्रांगधरा, धौल, दुजाना, डूंगर-

पुर, दांता, देवासजुनियर, देवाससीनीयर, घोड़ासर, हिंडौल, हथवा, ईडर, जयपुर, जामनगर, झाबुआ, झालावाड़, झींद, जोधपुर, जूनागड़, जम्बूगोड़ा, करौली, कटोसन, कवर्धा, क्योंझर, खडौल, खजूर-गांव खंडेला, खनियाधाना, खिरासरा, कोठी, कोटरा-सांगानी, कुरुन्दवाड़ सीनियर, किशनगढ़, केकड़ी खैरागढ़, कोल्हापुर, कन्केर कुरवई, लखतर, लाठी, लीम्बड़ी, लोधीका, लुनावाड़ा, मह्यीयर, मलिया, मांडवा, मांगरौल, मिरजजूनियर, मौहनपुर, मूली, मुस्थान, मोहम्दी, मनिपुर, मानसा, मकराई, नागौद, नलागढ़, नन्दगांवराज; नयागढ़, नरसिंहगढ़, नानपाड़ा, नाभा, पन्ना, जुनिया, पटना पाटौदी पंचकोट, पादड़ी, परतापगढ़, पेथापुर, फल्टन, पोरबन्दर, रायसांकली, राजकोट, राजपीपला, रानासन, रतलाम, सौलाना, शाहपुरा, सकती, समथर, सोंठ सायला, सीकर, सिरोही, सीतामऊ, सुदासना, थाना देवली, टौंक, बड़ियावला, बलासना, वरसोड़ा, वसादर, वीरपुर, विट्ठलगढ़, बढ़वान, वाव, वाई उनियारा और कुरुन्दवाड़ जूनियर।

यदि इन स्थानोंके अतिरिक्त भी और कहीं छुट्टी स्वीकृत हुई हो तो पाठक सूचित करें। अब महावीर जयन्तीकी छुट्टीके समारोहको सार्वजनिक रूपसे मनानेके लिये विशिष्ट आयोजन करना चाहिये और जैनियोंको उस दिन अपना व्यापार तथा कारोबार बन्द रखकर पूरी लगनके साथ महावीर जीवनके साथ अपना सम्पर्क स्थापित करना चाहिये।

६ वैज्ञानिक अनुसन्धानके लिये छात्रवृत्तियां—

भारतके शिक्षामंत्रीके कार्यालयसे प्रकाशित एक विज्ञप्तिमें सूचित किया गया है कि १८५१ की लन्दन प्रदर्शनीके शाही कमिश्नरोंद्वारा इसवर्ष भारतीय विश्वविद्यालयों अथवा जिन संस्थाओंमें विज्ञानकी शिक्षा देनेका पोस्ट ग्रेजुएट विभाग विद्यमान है उनके विद्यार्थियोंको विज्ञान-सम्बन्धी अनुसन्धानके लिये एक छात्रवृत्ति दी जायगी। यह छात्रवृत्ति ३५० पौंड वार्षिक होगी जो दो सालकेलिये दी जायेगी। यह छात्रवृत्ति उस विद्यार्थीको दी जायेगी, जिसने विश्व विद्यालयका अपना पूरा कोर्स समाप्त कर लिया हो और जिसमें मौलिक वैज्ञानिक अनुसन्धानकी प्रतिभा पाई जाती हो। निर्वाचित विद्यार्थीको कमिश्नरों द्वारा स्वीकृत किसी भी विदेशी संस्थामें रहकर तात्त्विक अथवा प्रयुक्त विज्ञानकी किसी शाखामें अनुसन्धान करना होगा।

इस छात्रवृत्तिके लिये भारतीय डोमीनियम अथवा भारतीय रियासतोंके सभी ऐसे प्रजाजन आवेदनपत्र भेज सकते हैं। जिनकी आयु १ मई १९४८ को २६ वर्षसे कम बैठती हो। भारतमें रहने वाले अथवा विदेशमें रहनेवाले विद्यार्थियोंको अपने आवेदनपत्र सम्बद्ध विश्वविद्यालय अथवा संस्थाके अधिकारियों की सिफारिश सहित सम्बद्ध विश्वविद्यालय अथवा संस्थाके जरिये प्रान्तीय सरकारों और स्थानीय अधिकारियोंके जरिये अधिकसे अधिक १० मार्च १९४८ तक भारत सरकारके शिक्षा-विभागके सैक्रेटरीके पास भेज देना चाहिये।

योग्य जैन छात्रों को इस दिशामें अवश्य बढ़ना चाहिये।

साहित्यपरिचय और समालोचन

१-अनुभव प्रकाश— लेखक, स्व० पं० दीपचन्द शाह कासलीवाल। प्रकाशक, श्री मगनमल हीरालाल पाटनी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट, मारोठ (मारवाड़) मूल्य, अनुभवन।

यह हिन्दीका एक महत्त्वपूर्ण संक्षिप्त आध्यात्मिक गद्यग्रन्थ है। स्वाध्याय-प्रेमियोंके लिये बहुत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपयोगी है। इसकी प्रस्तावनामें पं० परमानन्द जैन शास्त्री, वीरसेवामन्दिर, सरसावाने लेखकके संक्षिप्त जीवन-परिचय और उनकी रचनाओं पर प्रकाश डाला है। इससे ज्ञात होता है कि लेखक विक्रमकी अठारहवीं सदीके अन्तिम चरण (१७७६) के एक अनुभवी आध्यात्मिक विद्वान् हैं। यह स्वाध्याय प्रेमियोंके कामकी चीज़ है।

२- जैनबोधकाचा ६० वर्षाचा इतिहास— लेखक- फूलचन्द हीराचन्द शाह, सोलापुर। प्रकाशक पं० वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, मंत्री-ध० रावजी सखाराम दोशी स्मारकमंडल, सोलापुर। मूल्य ।≈)।

प्रस्तुत पुस्तक मराठी जैन बोधकके साठ वर्षका संक्षिप्त इतिहास है। इसमें कब और किन सम्पादकों ने सेवा कार्य किया, यह बतलाया गया है। सामाजिक प्रवृत्तिका इससे कितना ही निदर्शन होता है।

३- विवरण-पत्रिका— प्रकाशक— दि० जैन शिक्षा संस्था, कटनी (मध्यप्रान्त)।

यह पूज्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी न्यायाचार्य द्वारा संस्थापित व संरक्षित दिगम्बर जैन शिक्षा संस्था कटनीकी वि० सं० १९८८ से वि० सं० २००२ तक पन्द्रह वर्षोंकी रिपोर्ट है। इसमें संस्थाके विभिन्न विभागों और उनके आय-व्यय, उन्नति आदिका संक्षिप्त विवरण दिया गया है जिससे ज्ञात होता है कि संस्थाने थोड़े समयमें पर्याप्त प्रगति की है।

४- दिगम्बर जैनका स्वतन्त्रता अंक—

सम्पादक-मूलचन्द किशनदास कापड़िया, सूरत।

दिगम्बर जैन अपने विशेषाङ्कोंके लिये प्रसिद्ध है। यह विशेषांक भारतकी स्वतन्त्रता-प्राप्तिके उपलक्ष्यमें हालमें प्रकट हुआ है। कवरके मुख-पृष्ठपर स्वाधीन भारत और राष्ट्रीय झंडेके चित्रोंके साथ पं० नेहरू, सरदार पटेल और राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादके सुन्दर चित्र हैं। तृतीय पृष्ठपर अहिंसाके पुजारी पूज्य वर्णी जी और महात्मा गांधीके भव्य चित्र हैं। लेख पठनीय हैं। कापड़ियाजीका प्रयत्न स्तुत्य है।

५- खण्डेलवाल जैन हितेच्छुका पुराणाङ्क—

सम्पादक और प्रकाशक— पं० नाथूलाल जैन साहित्यरत्न इन्दौर, सहसम्पादक पं० भंवरलाल जैन न्यायतीर्थ जयपुर।

यह उक्त पत्रका विशेषाङ्क अभी हालमें प्रकाशित हुआ है। इसमें पुराण और पुराणके विविध भागों, प्रयोजनों आदि पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। स्व० पं० टोडरमल्लजी, जैनेन्द्रजी, नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य, बा० अजितप्रसादजी एडवोकेट, पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, बा० कामताप्रसादजी, पं० चैनसुखदासजी आदि अनेक लेखकोंकी सुन्दर और महत्वपूर्ण रचनाएं इसमें निबद्ध हैं। अङ्क पठनीय व सराहनीय है।

६- तत्त्वार्थसूत्र—(सार्थ)सम्पादक पं लालबहादुर शास्त्री, प्रकाशक भा० दि० जैन सङ्घ मथुरा। मू० ॥–)

यह संस्करण पिछले सब संस्करणोंसे अपनी अन्य विशेषता रखता है। वह यह कि पाठ करनेवाले स्त्री-पुरुषों और पाठशालाओंके बालक बालिकाओंके लिये धारणयोग्य मूलार्थ इसमें दिया गया है, जिससे उन्हें इसको पढ़ते पढ़ते ही उसका भावज्ञान होजावेगा भाषा बहुत सरल और चालू है।

पुस्तक-समाप्तिके अन्तमें जो 'अक्षरमात्रपदस्वरहीनं' 'दशाध्याये परिच्छिन्ने' 'तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं' ये तीन पद्य मूलमें ही मिला दिये गये हैं उनसे पाठकोंको यह भ्रम हो सकता है कि वे तीनों पद्य सूत्रकारके ही बनाये हुये हैं; परन्तु ऐसा नहीं है पहला पद्य ही सूत्रकारका है, अन्य दो पद्य तो पीछेसे सूत्रका माहात्म्य प्रदर्शित करनेके लिये किन्हीं टीकाकारादि विद्वानों द्वारा जोड़ दिये गये हैं। अतः उन्हें मूलमें नहीं मिलाना था। हां उन्हें मूलसे पृथक् 'तत्त्वार्थसूत्रका माहात्म्य' शीर्षक देकर उसके नीचे दिया जा सकता था। सूत्रकारका संक्षिप्त जीवन-परिचय भी रहता तो और भी अच्छा था। फिर भी प्रस्तुत संस्करण जिस उद्देश्यकी पूर्तिकेलिये प्रकट किया गया है उसकी निश्चयही इससे पूर्ति होती है। ऐसा संस्करण निकालने के लिये सम्पादक और प्रकाशक दोनों धन्यवादार्ह हैं।

—दरबारीलाल कोठिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुख्तार साहबकी ७१वीं वर्षगांठका दान

वीर-सेवा-मन्दिरके संस्थापक व अधिष्ठाता श्रीमान् पं० जुगलकिशोरजी मुख्तारने अपनी ७१ वीं वर्षगांठके अवसरपर गत मंगसिर सुदि ११ २५५) रु० का जो दान निकाला है और जिसे उन्होंने समान रूप से वितरित किया है वह जिन ५१ संस्थाओं आदिको दिया गया है उनके नामादि इस प्रकार हैं—

श्रीसम्मेदशिखर, राजगृह, पावापुर, गिरनार शत्रुञ्जय, सोनागिर, कुन्थलगिरि, गजपंथा, हस्तिनापुर द्रोणगिरि, रेशिंदेगिरि, महावीरजी, पञ्चायती जैन-मन्दिर सरसावा।

अनेकान्त, आत्मधर्म, सन्मति, वीर, वीरवाणी जैनमित्र, जैन सन्देश, जैनगजट (अंग्रेजी) खण्डेलवाल जैनहितेच्छु, जैन, जैनमहिलादर्श।

वीर सेवामन्दिर, जैन कन्यापाठशाला सरसावा, जैनगुरुकुल सहारनपुर, जैनखैराती शफाखाना सहारनपुर, जैनकालिज सहारनपुर, स्याद्वाद महाविद्यालय काशी, दि० जैनसङ्घ मथुरा, ऋ० ब्रह्मचर्याश्रम मथुरा, सत्तर्क जैनसंस्कृत विद्यालय सागर, श्रीकुन्दकुन्द जैन हाईस्कूल खतौली, जैनबालाविश्राम आरा, जैनअनाथाश्रम देहली, नमि जैन औषधालय देहली, जैनमित्र मण्डल देहली, दिगम्बरजैन परिषद देहली, दि० जैन विद्वत्परिषद् बीना, जैनऔषधालय बड़नगर, जैनकालिज बड़ौत, जैनसिद्धांतभवन आरा, महावीर जैनगुरुकुल कारञ्जा, दि० जैन महासभा देहली, जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई, सत्यसमाज वर्धा, जैनगुरुकुल ब्यावर, वीरविद्यालय पपौरा, परिषद् जैनपरीक्षा बोर्ड देहली (किसी भी परीक्षामें प्रथम आने वाले हरिजन या मुसलमानको पारितोषक), अतिथि सेवासमिति सोनगढ़।

—दरबारीलाल कोठिया

भारतीय ज्ञानपीठ काशीके प्रकाशन

१. **महाबन्ध**—(महाधवल सिद्धान्त शास्त्र) प्रथम भाग। हिन्दी टीका सहित १२)

२. **करलक्खण**—(सामुद्रिक शास्त्र) हिन्दी अनुवाद सहित। हस्तरेखा विज्ञानका नवीन ग्रन्थ। सम्पादक—प्रो० प्रफुल्लचन्द्र मोदी एम० ए०, अमरावती। १)

३. **मदनपराजय**—कवि नागदेव विरचित (मूल संस्कृत) भाषानुवाद तथा विस्तृत प्रस्तावनासहित। जिनदेवके कामके पराजयका सरस रूपक। सम्पादक और अनुवादक— पं० राजकुमारजी सा० ८)

४. **जैनशासन**—जैनधर्मका परिचय तथा विवेचन करने वाली सुन्दर रचना। हिन्दू विश्वविद्यालयके जैन रिलीजनके एफ० ए० के पाठ्यक्रममें निर्धारित। कवर पर महावीरस्वामी का तिरंगा चित्र। ४।-)

५. **हिन्दी जैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास**—हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास तथा परिचय। २॥)

६. **आधुनिक जैन कवि**—वर्तमान कवियोंका कलात्मक परिचय और सुन्दर रचनाएँ। ३॥)

७. **मुक्ति-दूत**—अञ्जना-पवनञ्जयका पुण्य चरित्र (पौराणिक रोमाँस) ४॥)

८. **दो हजार वर्षकी पुरानी कहानियां**—(६४ जैन कहानियां) व्याख्यान तथा प्रवचनोंमें उदाहरण देनेयोग्य ३)

९. **पथचिह्न**—(हिन्दी साहित्यकी अनुपम पुस्तक) स्मृति रेखाएँ और निबन्ध। २)

१० **पाश्चात्य तर्कशास्त्र**—(पहला भाग) एफ० ए० के लाजिकके पाठ्यक्रमकी पुस्तक। लेखक—भिक्षु जगदीशजी काश्यप, एम० ए०, पालि-अध्यापक, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी। पृष्ठ ३८४। मूल्य ४॥)

११. **कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न**—२)।

१२. **कन्नडप्रान्तीय ताडपत्र ग्रन्थसूची**-(हिन्दी) मूड़बिद्री के जैनमठ, जैनभवन, सिद्धान्तबसदि तथा अन्य ग्रंन्थ भण्डार कारकल और अलियूरके अलभ्य ताड़पत्रीयग्रन्थोंका सविवरण परिचय। प्रत्येक मन्दिरमें तथा शास्त्रभंडारमें विराजमान करनेयोग्य। १०)

वीर सेवामन्दिरके सब प्रकाशन यहांपर मिलते हैं।

—प्रचारार्थपुस्तक मंगानेवाले महानुभावोंको विशेषसुविधा।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Regd. No. A-731.

भारतकी महाविभूतिका दुःसह वियोग !

भारतकी जिस महाविभूति महात्मा मोहनदास कर्मचन्दजी गान्धीके आकस्मिक निधन-समाचारोंसे सारा विश्व एक दम व्याप्त हो गया है, सर्वत्र दुःखकी लहर विद्युद्वेगसे फैल गई है. चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है—शोक छाया हुआ है—और विदेशों तकमें जिस अघटित-घटनाको महा आश्चर्यकी दृष्टिसे देखा जा रहा है तथा उसपर शोक मनाया जा रहा है, उस दुःखप्रद दुःसमाचार को अनेकान्तमें कैसे प्रकट किया जाय, यह कुछ समझमें नहीं आता ! इस दुःसह वियोगके कारण हृदय दुःखसे परिपूर्ण है, लेखनी कांप रही है और इसलिये कुछ भी ठीक लिखते नहीं बनता बुद्धि इस बातके समझनेमें हैरान और परेशान है कि जो महात्मा दिन-रात अविश्रान्तरूपसे भारतकी ही नहीं किन्तु विश्वकी निःस्वार्थ भावसे सेवा कर रहा हो, सदा ही मानव-समाजकी उन्नतिके लिये प्रयत्नशील हो, हृदयमें किसीके भी प्रति द्वेषभाव न रखता हो, एकनिष्ठासे अहिंसा और सत्यका पुजारी हो; अहिंसाकी अमोघ-शक्तिसे, बिना रक्तपातके ही जिसने भारतको स्वराज्य लाया हो और जिसकी सारी शक्तियां उस साम्प्रदायिक विषको लोक-हृदयोंसे निकालनेमें लगी हों जो समाजको मूर्छित पतित और मरणोन्मुख किये हुये है, उस महापुरुषको मार डालनेका विचार किसी मानव हृदयमें कैसे उत्पन्न हुआ ? कैसे उस लोकपूज्य लोकोत्तर परोपकारकी मूर्तिको तोड़नेके लिये किसी सजीव प्राणी का कदम आगे बढ़ा ? और कैसे ३० जनवरीकी सन्ध्याके समय पांच बजकर पांच मिनिटपर ईश-प्रार्थनाके लिये जाते हुए उस धर्मप्राण निःशस्त्र निरपराध वृद्ध महात्मापर तीनबार गोली चलानेके लिये किसी युवकका हाथ उठा !!! मालूम नहीं वह युवक कितना निष्ठुर, कितना कठोर, कितना निर्दय और कितना अधिक मानवतासे शून्य अथवा अमानुषिक हृदयको लिये हुए होगा, जो ऐसा घोर पापकर्म करनेमें प्रवृत्त हुआ है, जिसने सारे मानव-समाजको उसके नित्यके प्रवचनों सदुपदेशों सलाह-मशविरों और सक्रिय सहयोगोंसे होने वाले लाभोंसे एकदम वंचित कर दिया है। और इसलिये जिसे मानवसमाजका बहुत बड़ा हितशत्रु समझना चाहिये। गांधीजीने उस मराठा युवकका—जिसका नाम नाथूलाल विनायक गोडसे बतलाया जाता है कोई बिगाड़ नहीं किया, कोई अपराध नहीं किया और न उसके प्रति कोई दुर्व्यवहार ही किया है, फिरभी वह उनके प्रति ऐसा अमानुषिक कृत्य करनेमें प्रवृत्त हुआ अथवा मजबूर हुआ। जरूर इसके पीछे—पुश्तपर कोई भारी षडयन्त्र है—कुछ ऐसे लोगोंकी बहुत बड़ी साजिश है जो सारे राजतन्त्रको ही एकदम बदलकर स्वयं सत्तारूढ होना चाहते हैं और इसलिये जो गान्धीजीको अपने मार्गका प्रधान कण्टक समझ रहे थे।

इस हृदयविदारक दुर्घटनासे भविष्य बड़ा ही भयंकर प्रतीत हो रहा है। अतः शासनारूढ़ नेताओं को शीघ्र ही षडयन्त्रका पता लगाते हुए अब आगे बहुतही सतर्क एवं सावधान रहनेकी जरूरत है और बड़े प्रयत्नके साथ गांधीजीके उस मिशनको पूरा करनेकी आवश्यकता है जिसे वे अभी अधूरा छोड़ गये हैं। गांधी जी तो भारतके हितके लिये अन्तमें अपना खून तक देकर अमर हो गये। अब यह उनके अनुयायियोंका परम कर्तव्य है कि वे उनके मिशनको सब प्रकारसे सफल बनायें। इसीमें भारतका हित है और यही महात्माजीका वास्तविक अर्थोमें अमर स्मारक होगा।

—सम्पादक

मु० प्रका० पं० परमानन्दशास्त्री भारतीयज्ञानपीठ काशीके लिये अजितकुमार द्वारा अकलङ्कप्रेस सहारनपुरमें मुद्रित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org